UNIVERSAL LIBRARY

OU_186271

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H 375 K29B Accession No G H 393

Author खन्ना भगवानदास

Title भारतीय विद्यार्थी विनोद

This book should be returned on or before the date last marked below

भारतीय ग्रन्थ माला—संख्या २

भारतीय विद्यार्थी विनोद

(संशोधित और परिवर्द्धित)

लेखक

भारतीय शासन, नागरिक शिक्षा, श्रद्धाञ्जलि, आदि के

रचयिता

भगवानदास केला

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थ माला, वृन्दावन

मुद्रक

त्रैलोक्यनाथ शर्मा, जमुना प्रिन्टिंग वर्क्स, मथुरा

तीसरा संस्करण
१२५० प्रतियां

सन् १९३२ ई०

मूल्य दस आने.

किया है। बड़ौदा राज्य में प्रजा को पांच वर्ष तक मुफ्त और अनिवार्य तौर पर मातृ-भाषा द्वारा ही शिक्षण दिया जाता है।

राष्ट्र-भाषा अथवा हिन्दी की वृद्धि के लिए तथा उसके प्रचार के सम्बन्ध में, इस पुस्तक में उत्तमता से चर्चा की गई है। पदार्थ-विज्ञान जैसे उपयोगी विषयों पर पूरा ध्यान दिलाया गया है। चाहे हम इस पुस्तक में दर्शाये हुए कई विचारों से सहमत न हों, यह बात निर्विवाद है कि हिन्दी-भाषा की सेवा के लिए जो उत्तम प्रयत्न लेखक महोदय ने (जो कि अँगरेज़ी की उच्च शिक्षा पाये हुए हैं, और जिनका उमंगी जीवन जन-सेवा के उच्च विचारों से भरा हुआ है) किया है, वह प्रशंसा के योग्य है। यदि बाबू भगवानदास जी की तरह और भी युवक हिन्दी भाषा की सेवा के लिए—जो भारत माता की सच्ची सेवा है—इस प्रकार निकल आवें तो भविष्य में पश्चिम के पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी उत्तम उत्तम मान्य ग्रन्थों के अनुवाद और सरल व्याख्या, देव नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में प्रकाशित होने से, निःसंदेह भारत के लिए भारी कल्याणकारी होंगे। यह उत्तम पुस्तक हिन्दी-प्रेमियों के प्रेम की पात्र बनेगी, यह हमें पूर्ण विश्वास है।

बड़ौदा
७-४-१६

हिन्दी प्रेमियों का एक सेवक
आत्माराम (अमृतसरी)

विषय सूची

प्रथम खण्ड, हमारे पाठ्य विषय		पृष्ठ
विषय प्रवेश	... ...	२
(१) भाषा ...	... ...	३
(२) गणित ...	... ...	१३
(३) भूगोल ...	... ...	२२
(४) इतिहास ...	... ...	३०
(५) आलेख्य ..	... ...	३७
(६) विज्ञान ...	... ...	४५
(७) अर्थ शास्त्र...	... ...	५३
(८) नीति ...	... ...	६२
(९) तर्क शास्त्र...	... ...	७१
(१०) दस्तकारी...	... ...	७७
द्वितीय खण्ड; विचारणीय विषय		
विषय प्रवेश	... ...	८६
(१) मातृ-भाषा से प्रेम	... ...	८७
(२) हमारी मातृ-भूमि	... ...	९३
(३) हमारी आदतें	... ...	९७
(४) आत्मोन्नति	... ...	१०२
(५) नियम पालन	... ...	१०६
(६) अपनी जांच करो	... ...	१११
(७) जीवन संग्राम	... ...	११५
(८) मानवी सुख दुख	... ...	११८
(९) जीवन यात्रा	... ...	१२४
(१०) अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर करो	...	१२९
(११) झंडा ऊंचा रहे हमारा	... ...	१३४

भारतीय विद्यार्थी विनोद

प्रथम खंड

हमारे पाठ्य विषय

विषय प्रवेश

परमात्मा की सृष्टि में चलाचल जड़ चैतन्य, अनेक प्रकार के पदार्थ हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिये, मनुष्य की इच्छा स्वाभाविक ही है। परन्तु शक्ति तथा समय परिमित होने के कारण, विचारशील मनुष्य चारों ओर हाथ न फैलाकर अपनी अपनी रुचि के अनुसार किसी एक विशेष विषय को चुन लेते हैं। हां, प्रायः किसी व्यक्ति को निरन्तर एक ही विषय के अध्ययन में लगे रहना रुचिकर नहीं होता, थोड़ी बहुत देर बाद मन ऊब जाता है। फिर, मानसिक शक्तियों के यथोचित विकास के लिये भी एक से अधिक ही विषय मनन किये जाने चाहियें। मुख्य मुख्य विषयों का परस्पर में सम्बन्ध बहुत होता है। उनका साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् ही मनुष्य इस योग्य होता है कि वह उनमें से किसी एक विषय का विशेष ज्ञान प्राप्त कर सके।

अस्तु, पाठ्य विषयों की संख्या की कोई सीमा नहीं। हम इस लेखमाला में थोड़े से ही विषयों पर अपने विचार प्रकट करेंगे। जिज्ञासुओं को चाहिये कि पहले मातृ-भाषा की आराधना करें। पश्चात् उसके द्वारा अन्य मुख्य विषयों का साधारण ज्ञान प्राप्त करें। तदनन्तर जिस विषय की ओर विशेष रुचि हो, उसके वे अनन्य भक्त बन सकते है।

(१)

भाषा

मानवी आवश्यकताओं में भाषा का स्थान—सृष्टि-निर्माता ने मनुष्य को स्वभाव से ही समाज-प्रिय बनाया है। वह अकेला नहीं रह सकता। सैकड़े पीछे एक-आध व्यक्ति (योगी) को छोड़ सब मनुष्यों को अन्न, वस्त्र, मकान आदि की भिन्न भिन्न प्रकार की आवश्यकतायें रहती हैं, और अपनी समस्त आवश्यकताओं का पूरा करना किसी एक आदमी के लिये कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव है। अतः हमें दूसरों का आसरा लेना पड़ता है।

अपनी आवश्यकताओं को दूसरों पर प्रकट करने के लिये मनुष्य को कुछ चिह्नों का प्रयोग करना होता है। प्रथम अवस्था में मनुष्य यह कार्य मुँह हाथ की हरकतों तथा भिन्न भिन्न आकृतियों द्वारा चला लेता है। पर धीरे धीरे उसे ये सब साधन अपूर्ण मालूम होने लगते हैं; अन्त में प्रत्येक भाव के लिये शब्द-विशेष नियत करने होते हैं। इस प्रकार, सबके सुभीते के लिए किसी एक भाषा का आविष्कार होता जाता है। अतएव भाषा मनुष्य को आरम्भ में ही आवश्यक होती है, इसके बिना वह कोई महान कार्य करने

का साहस नहीं कर सकता। भाषा ही मानव-जाति की उन्नति का प्रधान कारण है।

भाषा स्वतः कोई कार्य सिद्ध नहीं करती, परन्तु किसी भी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यह प्रथम साधन है। सबसे पहले इसी की आवश्यकता पड़ती है। जैसे कि रुपया क्षुधादि शान्त करने में स्वतः कुछ भी काम नहीं आता, तथापि इस से हमारी प्रायः सब आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं, इसी प्रकार भाषा भी ज्ञान-भण्डार का द्वार है, जिस में प्रत्येक विद्या देवी के उपासक को प्रवेश करना पड़ता है।

मातृ-भाषा का महत्व—भाषायें तो अनेक हैं, परन्तु प्रायः मनुष्य को, सबसे प्रथम तथा सबसे अधिक काम अपनी मातृ-भाषा से ही पड़ता है। इस लिये पहले उसी का विचार करते हैं। यह बात निर्विवाद सिद्ध है, कि मातृ-भाषा का बोध अल्पतर श्रम से हो जाता है, और इसको सीख लेने पर दूसरी भाषाओं का सीखना भी सुगम होजाता है। अतएव यह बात सदैव ध्यान में रखनी चाहिये कि यदि विद्यार्थियों को कोई अन्य भाषा सीखनी ही हो तो मातृ-भाषा का भले प्रकार ज्ञान प्राप्त करने से पहले उसको कदापि आरम्भ न करें।

हर्ष का विषय है कि इस ओर देश-शुभ-चिन्तकों का ध्यान आकर्षित हुआ है। यह विचार किया जा रहा है कि पांच वर्ष देशी भाषा में ही सब शिक्षा हो; तत्पश्चात् अंगरेज़ी आदि का श्रीगणेश किया जाय। अवश्य ही इस अवधि (पांच वर्ष की) को कुछ और बढ़ा देना उचित ही होगा, परन्तु अभी इसी नियम का सब स्थानों में यथोचित पालन होने लगे तो भी बहुत है। हम देखते हैं कि कितने ही स्थानों में तीन कक्षायें पास करने के बाद, चौथे वर्ष ही अंगरेज़ी आरम्भ करदी जाती है। इसका दुष्परिणाम भी छिपा नहीं है। हमारे विद्यार्थियों में बड़ी संख्या उनकी होती है, जो दुर्भाग्यसे सात-आठ वर्ष से अधिक पाठशाला में व्यतीत ही नहीं कर सकते। शिक्षण व्यय की उत्तरोत्तर वृद्धि तथा जीवन-संग्राम की चिन्ता उन्हें एक दम आ घेरती हैं, और उन बेचारों को अपनी पढ़ाई बन्द कर देनी पड़ती है। इस बीच में अंगरेज़ी का यथोचित बोध होना तो दूर रहा, उन्हे अपनी प्यारी मातृ-भाषा का भी यथार्थ ज्ञान नही हो पाता। "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का"।

अब रहे वे विद्यार्थी, जिनको दस-ग्यारह वर्ष तक पाठशाला में अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त है। इनमें से भी बहुतों को देशी भाषा के पत्रों का अर्थ ही समझने में कठिनाई प्रतीत होती है। साधारण सुगमता से वे उसका

रसास्वादन नहीं कर सकते, विषय-ज्ञान का तो कहना ही क्या है। माध्यमिक श्रेणियोंमें विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने के कारण, उन्हें व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता, केवल परीक्षा पास करने योग्य होता है।×

यह भी खेद का विषय है कि जो विद्यार्थी संस्कृतज्ञ होने का दम भरते हैं, उनमें से कितनों ही को शुद्ध हिन्दी लिखना पढ़ना नहीं आता; और, आवे भी क्योंकर! ज्यों त्यों वर्णमाला के अक्षर सीखे, कि लगे संस्कृत की पुस्तकें रटने। यह शोचनीय प्रथा हमारे तीर्थ-स्थानों के क्षेत्रों में बहुत प्रचलित है। *

ज्ञान वृद्धि—विद्यार्थियों को धीरे धीरे अपने ज्ञान-भंडार की वृद्धि करते रहना चाहिये। इसका अभिप्राय केवल यह नहीं है कि वे कठिन कठिन शब्दों का अर्थ कंठ करलें। नहीं, उन्हें उन शब्दों का व्यवहार भी आना चाहिये। यदि वे यह

× शिक्षा विभाग के अधिकारियों को इन बातों पर ध्यान देना चाहिये। विदेशी भाषा (अंगरेज़ी), छोटी श्रेणियों में आरम्भ न की जानी चाहिये, ऊंची श्रेणियों में भी वह एक स्वतंत्र भाषा के तौर से पढ़ायी जानी चाहिये, उसे दूसरे विषयों की शिक्षा का माध्यम बनाना अत्यन्त हानिकर है।

* इन क्षेत्रों की संस्थाओं के संचालकों को इस विषय में यथेष्ठ ध्यान देना और सुधार करना चाहिये।

नहीं जानते कि किस शब्द का प्रयोग कैसे अवसर पर किया जाता है, अर्थात् उसे वाक्य-रचना में किस प्रकार स्थान दिया जाता है, तो उनके अर्थ याद कर लेने मात्र से विशेष लाभ न होगा; वह मस्तिष्क पर वृथा भार बढ़ाना है। वह हज़म न होने वाले खाद्य वस्तु की भांति, अथवा आज्ञानुसार काम न करने वाले नौकर के समान त्याज्य है। विद्यार्थियों को क्रमश इस बात का भी अभ्यास करना चाहिये कि जो कुछ वे पढ़े, उसका सारांश वे ज़बानी अपने शब्दों में कर सकें। इससे उनकी स्मरण-शक्ति तथा ज्ञान की वृद्धि होती है।

विचार विनिमय—भाषा-ज्ञान का उपयोग यह है कि मनुष्यों का परस्पर में विचार-विनिमय हो सके, हम अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकें, तथा दूसरो का ज्ञान बढ़ाने में सहायक हो सकें। अपने ज्ञान की वृद्धि के लिये हमें दूसरों का वार्तालाप तथा भाषण सुनने चाहिये। इसके अतिरिक्त, भाषण करनेसे भी ज्ञान वृद्धि होतीहै, क्योंकि इससे इस बात की जाच होती है कि हमें किसी विषय का कितना बोध है, और उसमें हमारी क्या न्यूनता या त्रुटि है। ज्ञान-वृद्धि का दूसरा उपाय दूसरों की रचनाओं को पढ़ना, और स्वयं भी समय समय पर कुछ निबन्ध आदि लिखना है। लिखकर देखने से, हमारे ज्ञान की स्पष्टता या जांच होजाती

है, और हमें अपनी न्यूनता का बोध होजाने से, हम उसे अच्छी तरह दूर कर सकते हैं।

भाषण और लेखन के अभ्यास से, दूसरों की ज्ञान-वृद्धि के लिये भी हमारी तैयारी होजाती है, जिसका सम्यग् उपयोग बड़े होने पर किया जा सकता है।

भाषण—बहुत से विद्यार्थी भाषण या व्याख्यान देने की ओर समुचित ध्यान नहीं देते। बहुधा बड़े होने पर भी उनके मन में संकोच रहता है; वे बोलने लगते हैं तो उन्हें कुछ कँपकपी सी आजाती है, वे अपना विषय भूल जाते हैं। इसका उपाय यही है कि विद्यार्थी छोटी श्रेणियों से ही इसका समुचित अभ्यास करें, अपनी उम्र के साथियों में छोटे छोटे भाषण किया करें। आरम्भ में वे कोई कहानी, भजन, कविता या जीवन चरित्र ही सुना सकते हैं। पीछे, क्रमशः अधिकाधिक गूढ़ विषय ले सकते हैं। अथवा, किसी वस्तु के पक्ष या विपक्ष में बोलने, या दो चीजों की तुलना करने का कार्य कर सकते हैं। आज कल बहुत सी संस्थाओं में भाषण देने का अभ्यास कराने के लिये सभाओं की व्यवस्था होती है। विद्यार्थियों को उनमें समुचित भाग लेना चाहिये।

पत्र और निबन्ध लेखन—पहले कहा जा चुका है कि अपने (तथा दूसरों के) ज्ञान की वृद्धि का एक उपाय

लेख लिखना भी है। इसका अभ्यास विद्यार्थी तीसरी चौथी श्रेणी से ही कर सकते हैं। पहले वे छोटे छोटे पत्र लिखना आरम्भ करें, जिन में कुशल क्षेम आदि के घरेलू समाचार रहें। क्रमशः वे बड़े पत्र लिख सकते हैं, जिन में किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार प्रकट किये जांय, उदाहरणतः छोटे भाई को यह बताया जाय कि स्वास्थ-रक्षा कितनी आवश्यक है, और उसके लिये किन किन बातों पर ध्यान रखना चाहिये, अथवा व्यायाम से क्या क्या लाभ हैं, और भिन्न भिन्न व्यायामों के सम्बन्ध में कौन कौन सी बात जाननी चाहियें।

कुछ ज्ञान-वृद्धि तथा पत्र-लेखन के अभ्यास के बाद, विद्यार्थी निबन्ध लिखना आरम्भ कर दें। निबन्धों में वर्णनात्मक सब से सरल होते हैं। इनमें गाय, घोड़ा, हाथी, नदी, पहाड़, चेतन या अचेतन पदार्थ का वर्णन करना होता है। इनकी अपेक्षा विवरणात्मक निबन्ध कुछ कठिन होते हैं, जिनमें किसी ऐतिहासिक, पौराणिक या आकस्मिक घटना का विवरण हो, उदाहरणवत् बुद्धदेव या राणा प्रताप आदि का जीवन चरित्र, योरपीय महायुद्ध, रेल गाड़ी, मोटर आदि। इस प्रकार के निबन्धों का अभ्यास होजाने पर विचारात्मक लेखों का अभ्यास किया जाना चाहिये, क्योंकि ये प्रायः कठिन होते हैं। ऐसे निबन्धों के कुछ उदाहरण

निम्न लिखित हैं:—सत्य भाषण, विद्या, स्वाधीनता, मित्रता, प्रेम, कृषि और व्यापार, कुसंगति में रहने से अकेला ही रहना अच्छा है, जहां चाह वहां राह, छुट्टी कैसे बितानी चाहिये, इत्यादि।

पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें—विद्यार्थी प्रारम्भिक अवस्था में कथा कहानियां बहुत पसन्द करते हैं। इससे पठन पाठन में उनकी रुचि बढ़ती है। हां, वे विशेषतया ऐसी ही कहानियां पढ़ें तो अच्छा है, जो स्वाभाविक तथा सुरुचि-पूर्ण हों। पश्चात् वे क्रमश ऐतिहासिक कहानियां या जीवन-चरित्र आदि पढ़ सकते हैं। विद्यार्थियों में कवितायें पढ़ने तथा कंठ करने की भी रुचि होती है। अच्छा है, वे जिन पुस्तकों को पढ़ें वे निरी गद्य में ही न हो, उनमें उनकी समझ में आने योग्य पद्य भाग भी रहे।

विद्यार्थियों को कुछ पढ़ने लिखने का अभ्यास होजाने पर उन्हें केवल पाठ्य पुस्तकों से संतुष्ट न रहना चाहिये, उन्हें अन्य उपयोगी पुस्तकों का भी अवलोकन करते रहना चाहिये। यही नहीं, उन्हें सामयिक साहित्य में से भी उपयोगी सामग्री का रसास्वादन करना चाहिये, आज कल कई पत्र-पत्रिकाओं में विद्यार्थियों के लिये विशेष स्तम्भ रहते हैं। इसके अतिरिक्त खिलौना, बाल सखा, शिशु, बालक, युवक, सहेली आदि कई पत्र-पत्रिकायें केवल विद्यार्थियों को

लक्ष्य में रखकर ही निकाले जाते है। पाठकों को इनसे लाभ उठाना चाहिये।

अन्य भाषायें—इस लेख में हमने अभी तक मातृ-भाषा के सम्बन्ध में ही विचार किया है। बहुत से देशों में, उनके भिन्न भिन्न भागों के निवासी पृथक् पृथक् भाषा का व्यवहार नहीं करते, उन सब की एक ही भाषा होती है, वही उनकी मातृ-भाषा होती है, और वही राष्ट्र-भाषा। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में हिन्दी, बंगला, मराठी गुजराती, आदि भाषायें प्रचलित हैं, हां, सब की राष्ट्र भाषा हिन्दी है। यों तो प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी मातृ-भाषा सीख लेने के उपरान्त, बड़े होने पर देश की एक दो अन्य भाषायें भी सीखनी चाहियें, परन्तु राष्ट्र-भाषा तो सबके लिये आवश्यक और उपयोगी है।

यह तो हुई अपने देश की भाषाओं के सम्बन्ध की बात। अब अन्य देशी भाषाओं के विषय में विचार करते हैं। जैसे किसी भी एक देश के निवासी समस्त विद्या-भंडार को प्राप्त नहीं कर सकते, इसी प्रकार किसी एक देश की भाषा पूर्ण ज्ञान की स्वामिनी नहीं हो सकती। हां, उन्नत भाषा में, अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक ज्ञान-सामग्री होती है। परन्तु उन्नत देशो के व्यक्ति भी अपनी भाषा के भंडार को अधिकाधिक बढ़ाने के प्रयत्न में लगे रहते हैं। वे अपनी

भाषा में, दूसरी भाषाओं की उत्तमोत्तम पुस्तकों के आधार पर रचना करते हैं, तथा उनके अनुवाद भी करते रहते हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि जो उत्तमोत्तम पुस्तकें दूसरी भाषा की, उनके देखने में आवें, उन्हें अपनी डायरी में दर्ज कर लेवें, बड़े होने पर जिसकी आवश्यकता समझें, उसका अनुवाद अपनी मातृ-भाषा या राष्ट्र-भाषा में करें, अथवा उसके आधार पर कोई रचना प्रस्तुत करें। यदि हमारे यहां का प्रत्येक अनुभवी विद्वान सच्चे हृदय से यह संकल्प करके कि मैं कम से कम एक मौलिक या अनुवादित अच्छी पुस्तक की भेंट, अपनी भाषा में करूंगा तो हमारी साहित्य संसार की यथेष्ठ वृद्धि कैसी सुगमता से होजाय। *

* इन पंक्तियों के लेखक ने अपने विद्यार्थी जीवन में ऐसा निश्चय किया था, परमात्मा की कृपा से वह पूरा होगया।

(२)

गणित

व्याख्या और भेद—गणित वह विद्या है जो संख्याओं और राशियों का गिनना, नापना और तोलना बतलाती है। इससे हमें विविध वस्तुओं के आकार और परिमाण के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है, और हम यह जान लेते हैं कि उनका एक दूसरे से क्या सम्बन्ध या अनुपात है। इस विद्या के कई भेद हैं, जिनमें से मुख्य अङ्कगणित, बीजगणित, ज्योतिष, और रेखागणित हैं।

अङ्कगणित संख्याओं का प्रयोग बतलाता है और उनके सम्बन्धों द्वारा वस्तुओं की गणनादि में सहायता देता है। बीजगणित में संख्याओं और राशियों के स्थान में अक्षरों का प्रयोग होता है। ग्रह नक्षत्र आदि की गति तथा समय का हिसाब ज्योतिष से लगता है। और, रेखागणित वस्तुओं के विविध आकारों (घन या पिंड, धरातल या क्षेत्र, रेखा और बिन्दु) से सम्बन्ध रखने वाली विद्या है।

कुछ ऐतिहासिक विचार—आज कल जब कि एक बच्चा भी सौ तक गिन सकता है, प्रायः यह अनुमान किया जाता है कि अङ्कगणना आदि काल से चली आयी है। परन्तु, विकासवादियों के मत से ऐसा विचार ठीक नहीं है। तत्त्व-दर्शी बतलाते हैं कि सृष्टि के इतिहास में ऐसा समय बहुत काल तक रह चुका है, जब मनुष्य को एक दो की कल्पना ही न हुई थी। एक गणितज्ञ अपने जीवन चरित्र के बहाने से अङ्कगणना का आरम्भ इस प्रकार लिखते हैं—

"जब मैं बाल्यावस्था में था, मैं समस्त ब्रह्माड को-जिसे अब अनेक भागों मे विभक्त मानता हूं-एक ही समझता था। 'एकमेव द्वितीयो नास्ति' मेरा अटल सिद्धान्त था; जो कुछ मुझे दीखता था, सब मेरा ही रूप था। ऐसी अवस्था कितने ही समय तक बनी रही, यहां तक कि एक दिन मेरे विचारों में एक-दम परिवर्तन करने वाली घटना उपस्थित हो गयी। मैं घुटनों के बल इधर उधर फिर रहा था कि एक वृक्ष से मेरा सिर टकराया और मेरे विचारो ने चक्कर खाया। मैं सोचने लगा कि टकराने वाली वस्तु मेरे शरीर से अवश्य भिन्न है। थोड़ी देर में मुझे एक से दो का ज्ञान हुआ।"

कुछ आश्चर्य नहीं कि अङ्कों की ज्ञान-प्राप्ति के लिये सृष्टि की शैशवावस्था में मानव जाति को एक क्या अनेक

टक्करें लगी हों। अस्तु, पहले मनुष्य की विचार शक्ति इतनी प्रबल न थी कि कई पदार्थों की; एक ही समय में, कल्पना की जाती। जहां दो तीन चीज़ें सामने आयीं, उसने झट उन्हें अनेक वचन, बहुवचन, इत्यादि सज्ञाएँ दे दीं।

पीछे धीरे धीरे बुद्धि-विकास होता गया। अंगुलियों के सहारे आगे की सख्या गिनने की व्यवस्था की गयी। अधिकांश प्रचलित भाषाओं में पाच और पंजा (हाथ) एक ही शब्द से निकले हुए है। दस के लिए दोनों हाथों का संकेत किया जाता था। अधिक पदार्थों के लिए दूसरे मनुष्य के हाथ की अंगुलियों की आवश्यकता होती है। इसलिए ग्यारह, बारह, तेरह के अंकों को क्रमशः ११, १२, १३ लिखा जाता है, इनमें बांई ओर का '१' पहले मनुष्य की दस अंगुलियों का प्रतिनिधि है और दांई ओर के १, २, ३, दूसरे मनुष्य की एक, दो, तीन उगलियों के द्योतक हैं। इसी प्रकार सौ, हज़ार, लाख इत्यादि तक यह क्रम बढ़ाया जाता है और १, २, ३, ४ आदि केवल नौ अंकों और एक शून्य (०) से गिनती का सब काम चल जाता है।

यह भली भांति सिद्ध हो गया है कि गणना की उपर्युक्त 'दशमिक' प्रणाली सबसे प्रथम भारतवर्ष में ही निश्चित की गयी थी; पीछे यहां से यह अरब, तथा वहां से अन्य पाश्चात्य देशों में प्रचलित हुई। इतिहासकारों के अनुसार

अनेक स्थानों में बहुत समय ऐसा रह चुका है जब कि यह प्रणाली प्रचलित न थी, प्रत्येक संख्या के लिए भिन्न भिन्न अङ्क ठहराये हुये थे, और (०) से कुछ काम न लिया जाता था।* उस स्थिति में गणित का कार्य आज कल की अपेक्षा कितना परिमित एवं जटिलता-पूर्ण था, यह बतलाने की कुछ आवश्यकता नहीं। फिर, इन वर्तमान नौ अङ्कों का सदैव एक ही रूप रहा हो सो भी नहीं। तत्त्ववेत्ताओं ने खोज करके यह प्रमाणित किया है कि अङ्कों में से प्रत्येक के पहले कई कई स्वरूप रह चुके हैं, एवं मनुष्य के सौन्दर्य्य-प्रेम और जल्दी लिखने की इच्छा के अनुसार इन्हें समय समय पर नवीन रूप धारण करना पड़ा है।

जिन विद्यार्थियों को इस विषय पर अधिक जानने की अभिलाषा हो, वे कोई गणित का इतिहास देख लेवें।

गणितीय शाखाओं का भारत में आविष्कार—यह बात अब भली प्रकार सिद्ध होगयी है कि हिन्दुओं की आरम्भ से ही धर्म में रुचि रही है, इसलिये उन्होंने उन

* इस का एक अच्छा उदाहरण रोमन प्रणाली है। उस में एक के लिये 'I' लिखा जाता है, परन्तु शून्य का प्रयोग न होने से दस के लिये भिन्न अक्षर 'X' नियत है। इस के अनुसार ३० को XXX लिखा जाता है, और अड़तीस जो हिन्दी में केवल दो अंकों '३' और '८' से सूचित होता है, इस में सात अक्षरों से XXXVIII लिखा जाता है।

उन विषयों की खोज करना भी अपना कर्तव्य समझा, जिनका धर्म से सम्बन्ध था। जब आर्य लोगों को यज्ञ करने के लिए समय निश्चित करने की, एवं अन्य धार्मिक क्रियाओं के लिए पंचांग बनाने की आवश्यकता पड़ी, तब उन्होंने सूर्य्य चन्द्रमादि ग्रह-नक्षत्रों की चाल की ओर ध्यान दिया। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र का आविष्कार हुआ, जिसका वेदों में भली भाँति उल्लेख मिलता है।*

ज्योतिष में गणना की आवश्यकता होने के कारण उन्होंने अङ्कगणित निकाला। फि वेदिया बनाने में उन्हें रेखागणित की ज़रूरत पड़ी, क्यों कि एक ही क्षेत्रफल वाली भिन्न भिन्न आकार की, और दो वर्गक्षेत्रों के जोड़ के समान एक विशेष आकार की वेदी रेखागणित के विशेष ज्ञान के बिना, नहीं बनायी जा सकती। इस प्रकार हम देखते हैं कि

* कुछ लोगों का मत है कि ग्रह-नक्षत्रों की चाल का मनुष्यों के स्वास्थ्य तथा सुख दुख और हानि लाभ पर प्रभाव पड़ता है; इस प्रकार कहीं कहीं फलित ज्योतिष का बड़ा प्रचार है। भारतवर्ष में बहुत से ज्योतिषी आदमियों की जन्म-पत्री या वर्षफल बनाकर इस बात की भविष्य-वाणी किया करते हैं कि उनके लिये अमुक समय अच्छा रहेगा या बुरा, उन्हें अमुक कार्य में सफलता होगी या विफलता। वैज्ञानिक इन बातों पर विश्वास नहीं करते, उनका कथन है कि इनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

ज्योतिष, अङ्कगणित और रेखागणित का आविष्कार सब से प्रथम भारतवासियों ने ही किया, इसके लिए समस्त संसार भारत का ऋणी है। यह दूसरी बात है कि यूनान आदि देशों ने रेखागणित को उन्नति पर पहुंचा दिया, परन्तु यह कदापि सम्भव नहीं कि भारतवर्ष को यह विद्या यूनान ने सिखायी हो। इस बात को अनेकांश में सभी तत्त्ववेत्ता मुक्त कंठ से स्वीकार करते हैं।

केवल बीजगणित के विषय में कतिपय विद्वानों का ऐसा कथन है कि यह प्रथम अरब वालों ने आविष्कृत किया। परन्तु इसके खंडन के लिये सबल प्रमाण मिलता है।* बात असल में यह है कि बीजगणित का भी प्रथमतः आविष्कार तो (गणित की अन्य शाखाओं की भांति) किया

* मुहम्मद साहब का समय सन् ५७०–६२२ ई० तक रहा है। उनसे पहले तो अरब वाले प्रायः अशिक्षित थे। इस लिये उन्होंने, जल्दी से जल्दी, सातवीं शताब्दी में बीजगणित के तत्त्वों को पहचाना होगा। इधर, भारत में हम देखते हैं कि वराहमिहिर ने, जो सम्राट विक्रमादित्य के नवरत्नों में से था, अपने ज्योतिष-ग्रन्थों में बीजगणित के सिद्धान्तों से काम लिया है। इससे सिद्ध होता है कि बीजगणित का आविष्कार सम्राट विक्रमादित्य से पहले होचुका था, जिनका समय हम ईसा से ५७ वर्ष पूर्व का मानते हैं।

हिन्दुओं ने ही। परन्तु, अरबवालों ने यहां से लेकर इसका यूनान में, और यूनान वालों ने इसका अन्य योरपीय देशों में प्रचार किया। इसलिये योरपीय विद्वानों की यह समझ हो गयी कि सबसे पहले अरब वालों ने ही इस विद्या की खोज की है।

काल निर्णय--यह प्रमाणित होजाने पर कि आर्य हिन्दुओं ने ही गणित की सब शाखाओं का आविष्कार किया, अब यह निश्चय करना है कि इन्होंने इन विद्याओं की खोज कब आरम्भ की। हम यह कह चुके हैं कि इनका वेदों में उल्लेख मिलता है। बस, सिद्ध हुआ कि वैदिक काल में ही इनका आविष्कार हुआ। अब प्रश्न होता है कि 'वैदिक काल' क्या है। हिन्दू लोग वैदिक सम्वत् को आरम्भ हुए एक अरब छयानवे करोड़ वर्ष से ऊपर मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् इस विषय पर अभी तक सहमत नहीं हुए। जिनके विचार से सृष्टि की ही आयु पांच सात हज़ार वर्ष है, उनकी नज़र वैदिक काल को निश्चित करने के लिए इस सीमा के अन्दर रहनी स्वाभाविक ही है। अस्तु, धीरे धीरे विज्ञान इस विषय पर प्रकाश डालेगा कि सृष्टि की आयु क्या है, तब पाश्चात्य विद्वानों को वैदिक काल का (जिस पर कि हिन्दुओं की गणित की खोज का समय अवलम्बित है) भी कुछ ठीक निश्चय हो सकेगा।

गणित की आवश्यकता--गणित दिन रात की

व्यावहारिक विद्या है। इससे प्रत्येक मनुष्य को काम पड़ता है। किसान मज़दूर, ज़मींदार दुकानदार, राजनीतिज्ञ आदि कोई भी क्यों न हो, गणित के साधारण ज्ञान के बिना, उसका काम नहीं चल सकता। जीवन के प्रत्येक विभाग में इसकी आवश्यकता होती है। जीवन निर्वाह में सहायक होने के अतिरिक्त, गणित मनुष्यों का मानसिक विकास करने तथा उनकी स्मरण-शक्ति बढ़ाने में भी बहुत उपयोगी होता है।

जिन विद्यार्थियों को गणित की धुन लग जाती है, उन्हें इसके सामने कुछ अच्छा नहीं लगता। पाश्चात्य विद्वान् न्यूटन तो गणित की समस्याओं को हल करते करते भोजन की भी सुध बुध भूल जाते थे। हमारे स्वर्गीय लोकमान्य तिलक का कथन है कि गणित कविता के समान सरस है। इससे केवल आनन्द ही नहीं प्राप्त होता, बुद्धि-विकास भी होता है। यूनानी विद्वान् प्लेटो ने अपनी पाठशाला के द्वार पर यह लिख कर लगा दिया था कि "जिसको ज्यामिति (जो तत्कालीन यूनान का गणित का एक मात्र विषय था) न आती हो, वह अन्दर प्रवेश न करे", कारण कि उनका विचार था कि गणित न जानने वाला मनुष्य विचार-शक्ति से शून्य एवं पशु-सरीखा होगा। इसमें सन्देह भी नहीं है कि गणित के अभ्यास से मनुष्य की निरीक्षण, मिलान और निर्णय करने की आदत

पड़ती है, स्वय शुद्ध तर्क करने, और दूसरों की अशुद्ध तर्कना में त्रुटियां निकालने की योग्यता उत्पन्न होजाती हैं; और इन सब बातों का चरित्र-सुधार में बड़ा प्रभाव पड़ता है।

गणित की शिक्षा—बालकों को गिनने का बहुत चाव रहता है। उन्हें भाषा-शिक्षा के साथ ही अङ्कगणना आरम्भ कर देनी चाहिए। पहले पहल सरल सुबोध प्रश्नों से प्रारम्भ करके धीरे धीरे आगे बढ़ना चाहिए, जिससे उन्हें एक दम कठिनाई न मालूम हो। पीछे, सात आठ वर्ष में (क) अङ्कगणित के साधारण सब नियम (ख) कुछ क्षेत्रमिति (ग) कुछ थोड़ी सी बीजगणित सीख लेना चाहिए। पश्चात्, जिनकी इच्छा और रुचि हो, वे गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त करें। उच्च शिक्षा साधारण व्यवहार में काम न आकर ज्योतिष तथा पदार्थविज्ञान में उपयोगी होती है।

गणित का साहित्य--हमने ऊपर कहा है कि भारत-वासियों द्वारा गणित की भिन्न भिन्न शाखाओं का आविष्कार तो हुआ ही, साथ ही उन्होंने कई एक शाखाओं को अच्छी उन्नति पर भी पहुंचाया, इसके अत्युत्तम साक्षी इन विषयों के उपलब्ध ग्रन्थ हैं।* बड़ी आवश्यकता है कि जैसे हम अपने

* उदाहरणार्थ, वराहमिहिर जी की बृहत्संहिता, पञ्चसिद्धान्तिका, कालिदासजी का ज्योतिर्विदाभरण, आर्य्यभट्टजी का आर्यभट्टीय ग्रन्थ, ब्रह्म-भट्टजी का ब्रह्म स्फुट ग्रन्थ, भास्कराचार्यजी का सिद्धान्त शिरोमणि, इत्यादि।

पूर्वजों के गणित सम्बन्धी आविष्कारों का अभिमान करते हैं, हमारे भी कृत्य ऐसे हों कि हमारे वंशजों की हमारे विषय में अभिमान करने का सुअवसर मिले।

विद्यार्थियों के उपयोगी, गणित की कोई विशेष पत्र पत्रिका तो प्रकाशित नहीं होती। हां, आज कल कुछ पत्र पत्रिकाओं में गणित सम्बन्धी प्रश्न और चुटकले आदि रहने लगे हैं। गणित के विद्यार्थियो को इन पत्र पत्रिकाओं के इस अंश का अवलोकन करना उपयोगी है।

---

(३)

भूगोल

व्याख्या और भेद--भूगोल वह विद्या है जो पृथ्वी सम्बन्धी विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त कराती है। किसी स्थान की भूमि तथा जल वायु कैसा है, वहां का क्षेत्रफल और मनुष्य-संख्या क्या है, वहां विशेषतया क्या क्या पदार्थ उत्पन्न होते हैं, तिजारत (व्यापार) किन चीजों की होती है, लोगों का रहन-सहन और रीति-भांति कैसी है, उनमें कौन कौन से धर्म और सम्प्रदाय प्रचलित हैं. इत्यादि

प्रश्नों का उत्तर देने वाली विद्या यही है। इसके अध्ययन करते समय यह भी विचार करना होता है कि किसी भूमि का असर वहां के निवासियों पर क्या पड़ा, एवं उन आदमियों ने देश की प्राकृतिक स्थिति में क्या उन्नति की। यदि किसी स्थान के आदमी भूखे रहते हैं तो यह उनके आलस्य का फल है, अथवा प्रकृति की डाली हुई रुकावटों का; ऐसी समस्याओं को भी हम भूगोल का ज्ञान प्राप्त किये बिना हल नहीं कर सकते।

भूगोल के मुख्य भेद निम्न लिखित हैं:-(१) गणित सम्बन्धी, (२) प्राकृतिक, और (३) मनुष्य सम्बन्धी। गणित सम्बन्धी भूगोल में पृथ्वी के आकार, परिमाण, गति, ऋतु--परिवर्तन, ग्रहण आदि का वर्णन होता है। प्राकृतिक भूगोल में स्थल भाग और जल भाग की रचना, जल वायु, बन, बनस्पति, और खणिज पदार्थों आदि का विचार किया जाता है। मनुष्य सम्बन्धी भूगोल में मनुष्य और उसके काम धन्धों, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, आदि पर प्रकाश डाला जाता है; व्यापारिक और राजनैतिक भूगोल इसी के अन्तर्गत हैं।

भूगोल के ज्ञान की आवश्यकता—ज्यों ज्यों हमारा सम्बन्ध बाहरी दुनिया से बढ़ता जाता है, त्यों त्यों हमें भूगोल के ज्ञान की अधिकाधिक आवश्यकता होती जाती है। आज कल हमारा विचार-केन्द्र प्रायः अपने ग्राम,

नगर, या देश तक ही परिमित नहीं रहता, हमें यह जानने की इच्छा होती है कि संसार भर के भिन्न भिन्न स्थानों में क्या हो रहा है, उनकी आर्थिक अथवा राजनैतिक स्थिति कैसी है, वहां जाने से क्या क्या लाभ हैं। इन बातों के न जानने से हमें बहुत हानि उठानी पड़ती है।

इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भूगोल विद्या नींव का काम देती है। कोई घटना किस जगह हुई, यह तभी अच्छी तरह याद रह सकता है, जब हम यह जानलें कि वह जगह देश के किस भाग में कहां पर है, तथा वहा की परिस्थिति कैसी है। किसी ऐतिहासिक घटना के होने के क्या कारण थे, और उसके क्या परिणाम हुए, इसको समझने के लिये भी तत्सम्बन्धी भूगोल का परिचय होना आवश्यक और उपयोगी होता है।

आर्थिक दृष्टि से भी भूगोल से अनेक लाभ हैं। कल्पना करो, हमारे देश के एक प्रान्त में अकाल पड़ा हुआ है। अब यदि हमें यह विदित हो कि हमारे पास के किसी दूसरे प्रान्त में फसल अच्छी हुई है तो हम वहा से खाद्य पदार्थ अपने प्रान्त में लाकर दुर्भिक्ष-पीड़ित भाइयों का कष्ट निवारण कर सकते हैं। फिर, यदि कोई पदार्थ दूसरे देश में हमारे देश की अपेक्षा अधिक सुगमता से प्राप्त हो सकता है तो वहां की भौगोलिक स्थिति जानने से हम उस पदार्थ

की अधिक उत्पति के लिए, अपने देश में, प्रयत्न कर सकते हैं।

मल्लाहों, योद्धाओं, धर्म-प्रचारकों, और यात्रियों को तो इस विद्या की आवश्यकता पड़ती ही है, पर साधारण ज्ञान अन्य लोगो को भी होना चाहिये।

राष्ट्रीय दृष्टि से भूगोल का महत्व—भूगोल के यथेष्ठ ज्ञान के बिना हम अपने देश के पूर्ण स्वरूप की कल्पना अच्छी तरह नहीं कर सकते; स्वामी रामतीर्थ आदि के ऐसे कथन का समुचित मर्म नही समझ सकते कि भारतवर्ष वह शरीर है, जिसके चरण सुदृढ़ कैमोरिन हैं, हिमाचल जिसका उच्च सिर है, परम पावनी गगा और ब्रह्मपुत्र जिसके मस्तक से निकली हैं, विन्ध्याचल जिसकी कमर में बंधा हुआ कमरबन्द है, कारोमडल और मालाबार जिसकी दाहिनी व बाई टागे (पैर) हैं, पूर्वी पश्चिमी दिशायें जिसकी वह भुजाऐ हैं, जो सब मानव जाति का आलिङ्गन करनेको फैलीहैं। पैतीस कोटि भारतवासी सबही इसकी प्यारी संतान हैं। प्रत्येक देश-सेवी को अपने अपने प्रान्त सम्बन्धी सकुचित विचारों में ही निमग्न न रह कर, इस बात को सदैव स्मरण रखना तथा अपने अन्य भाइयों के हृदय में जमा देना चाहिये कि समस्त भारतवर्ष हमारा देश है। अस्तु, भूगोल-ज्ञान राष्ट्र निर्माण की एक आवश्यक सीढ़ी है।

भारतवासियों की यात्रा में अभिरुचि—आज कल कहीं कहीं विदेश-यात्रा का निषेध सुनने में आता है, इससे कुछ लोगों का यह अनुमान होजाना स्वाभाविक है कि भारतवासी प्राचीन काल में पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों की यात्रा न किया करते होंगे, और उन्होंने भूगोल सम्बन्धी कुछ महत्व-पूर्ण खोज न की होगी। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। हमारे प्राचीन ग्रन्थों में राजसूय यज्ञ और दिग्-विजय-यात्रा के अनेक प्रसंग आये हैं। और, तीर्थ-यात्रा तो लोग इस समय भी करते हैं। महाभारत में वर्णित युधिष्ठिर आदि की हिमालय-यात्रा से स्पष्ट है कि अबसे हज़ारों वर्ष पहले, हमारे पूर्वज ऐसे दुर्गम और ऊँचे स्थानों मे जाने का साहस करते थे। सुमात्रा, जावा, करबोडिया आदि में हिन्दू मन्दिरों और देवताओं के चिन्ह मिलते हैं। कालि-दास ने 'मेघदूत' में विविध स्थानों का ऐसा उत्तम वर्णन किया है, जैसा कोई स्वयं देखकर, या किसी प्रत्यक्षदर्शी से सुन कर ही कर सकता है। कुम्भकर्ण के छः महिने सोने की बात प्रचलित होने से यह स्पष्ट है कि ध्रुवों मे छ मास का दिन और छः मास की रात होने का अनुभव हमने बहुत समय पहले कर लिया था। निस्सन्देह इस बात के लिये अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं कि यात्रा और भूगोल सम्बन्धी अन्वेषण करने में भारतवासियों ने प्राचीन काल में, सबसे प्रथम महत्व-पूर्ण भाग लिया था। परन्तु खेद है

कि गत शताब्दियों के अन्धकारमय युग में यहां विदेश-यात्रा करने में कुछ धार्मिक रुकावट आ गयी है। आशा है कि ज्यों ज्यों समाज शिक्षित होता जायगा, तथा पूर्वजों की कीर्त्ति का स्मरण करेगा, ऐसी निरर्थक अड़चनें हट जायगी, और भारतवासी पुनः भूगोल विद्या में अनुराग रखने लगेंगे।

भूगोल की शिक्षा—कुछ विद्यार्थी समझते हैं कि भिन्न भिन्न भू-भागों की सीमा, तथा उनकी जल वायु, नदियों, पहाड़ों, शहरों, और पैदावार आदि के नाम याद कर लेना भूगोल का ज्ञान प्राप्त कर लेना है। परन्तु, भिन्न भिन्न नामों की सूची कंठस्थ कर लेना भूगोल का जानना नहीं है। विद्यार्थियों को प्रत्येक बात अच्छी तरह समझनी चाहिये। यदि किसी स्थान का जल-वायु गर्म या ठंडा है तो ऐसा क्यो है, इसके क्या कारण हैं ? किसी देश की भौगोलिक स्थिति का वहा की पैदावार पर क्या प्रभाव पडता है ? बहुधा दो निकटवर्ती स्थानो में भी वर्षा का बड़ा अन्तर हुआ करता है, एक मे बहुत अधिक बारिश होजाती है, दूसरे में बहुत ही कम। विद्यार्थियों को विचारना चाहिये, कि ऐसा भेद क्यों रहता है। यदि किसी नगर में ख़ास प्रकार के कल कारखाने बहुतायत से हैं, तो किन किन बातों से ऐसा होने में सहायता मिलती है।

भूगोल कंठ करनेवाले विद्यार्थी उन्हीं प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं, जिनके सम्बन्ध में उनकी पुस्तक में विचार किया गया है। और, सम्भव है, समय पर इनमें से भी कुछ बातें भूल जांय। इसके विपरीत, यदि विद्यार्थी जल वायु, वर्षा, पैदावार आदि के विषय में मूल बातें अच्छी तरह समझलें तो वे अपनी बुद्धि से ऐसे प्रश्नों का उत्तर भी बहुत कुछ ठीक ठीक दे सकते हैं, जिनका उनकी पुस्तक में उल्लेख न हुआ हो। निदान, भूगोल समझने और विचारने का विषय है, कंठ करने का नहीं। भूगोल के ज्ञान से विशेष लाभ भी उसी दशा में होता है जब यह अच्छी तरह समझ लियाजाय।

प्राकृतिक, राजनैतिक या व्यापारिक आदि जिस प्रकार का भूगोल सीखना हो, उस प्रकार का भौगोलिक मान चित्र (नकशा) सदैव सामने रखना चाहिए। भूगोल की पुस्तक और ऐटलस (नक्शों की किताब) इस विद्या के सीखने के लिए साधारणतया यथेष्ट साधन हैं। पर अनुभव-वृद्धि के लिए बाहर यात्रा करना आवश्यक है। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने तीर्थ यात्रा को मनुष्यों का एक आवश्यक कर्तव्य माना है।

भूगोल सम्बन्धी साहित्य--हिन्दी में अन्यान्य वैज्ञानिक विषयों की भांति भूगोल का अच्छा साहित्य अभी बहुत कम है। हां, यही सन्तोष है कि कुछ लेखकों का

ध्यान इस कमी को पूरा करने के लिये आकर्षित हुआ है। उदाहरणवत्, श्री. रामनारायण मिश्र बड़े परिश्रम से 'भूगोल' नाम के मासिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं। आपने इस विषय का खूब अध्ययन किया है। बड़ी बड़ी यात्रायें करने और बहुत समय से इस विषय को पढ़ाते रहने के कारण भी, आप इस विषय के अनुभवी और विशेषज्ञ हैं। कुछ समय हुआ, आप का 'भारतवर्ष का भूगोल,' प्रकाशित हुआ था, जो अनेक ज्ञातव्य और विचारणीय विषयों से परिपूर्ण है।

श्री० जगपति चतुर्वेदी जी की 'भौगोलिक कहानियां,' तथा 'पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें' आदि पुस्तकें भी अपने विषय की उपयोगी रचनायें हैं। पृथ्वी की या उसके भिन्न भिन्न भागों की यात्रा के सम्बन्ध में भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित होचुकी हैं, यथा पृथ्वी प्रदक्षिणा, दुनिया की सैर, भू-प्रदक्षिणा, योरप यात्रा, अमरीका भ्रमण, तिब्बत में तीन वर्ष, भारत भ्रमण, हिन्दू तीर्थ, बदरी केदार यात्रा, मेरी कश्मीर यात्रा, इत्यादि। विद्यार्थियों को चाहिये कि सुविधानुसार इन यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों को अवलोकन कर इनसे लाभ उठावें, तथा जब कभी उन्हें अपने स्थान से दूसरी जगह जाने का अवसर मिले तो उस जगह का भौगोलिक ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त किया करें।

(४)

इतिहास

व्याख्या—इतिहास की व्याख्या करते समय बहुत से लेखकों ने इस विषय को पृथक् पृथक् दृष्टि से देखा है। उनका कथन एक अंश में ही सत्य है, पूर्ण रूप से सत्य नहीं। उदाहरणवत एक महाशय का लेख है कि इतिहास किसी जाति का रोज़नामचा है। दूसरे कहते है कि इतिहास में प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र क्रमबद्ध रहते हैं। तीसरे कहते हैं कि इतिहास में किसी समय की प्रसिद्ध प्रसिद्ध लड़ाइयां, उनके कारण और परिणाम लिखे रहते है। इस देश में प्रायः विद्यार्थी विविध घटनाओं की तारीखें ही रटते रहते हैं, इससे यह अनुमान सहज ही होजाता है कि इतिहास का कार्य केवल राज्य सम्बन्धी उल्लेखनीय घटनाओं का क्रमबद्ध संग्रह करना ही है। परन्तु राजनैतिक इतिहास भी किसी देश या जाति के इतिहास का एक अंश मात्र है। इतिहास का तात्पर्य है विविध सामुहिक घटनाओं का सिल-सिलेवार वर्णन और विवेचन।

इतिहास के मुख्य विभाग ये हैं:—(१) धार्मिक, (२) सामाजिक, (३) आर्थिक, (४) साहित्यिक, और (५) राजनैतिक ।*

इतिहास का महत्व—इतिहास से विदित होता है कि मानव जाति का क्रमशः विकास किस प्रकार हुआ है । गत शताब्दियों के इतिहास के पठन पाठन से ही हम वर्त्तमान समय को भली भांति जान कर, भविष्य के लिये कुछ ठीक अनुमान कर सकते हैं । इतिहास में, मृतप्रायः जातियों को जीवन प्रदान करने की शक्ति है । फूट आदि कारणों से बिछुड़ी हुई जातियों का संगठन (मिलाप) इसीके अध्ययन और मनन से होता है; क्यों कि यह बतलाता है कि अवनत जातियों का जो पुनरुद्धार हुआ, वह किस किस अवलम्ब से हुआ, और उसमें कितने स्वार्थ-त्याग की आवश्यकता हुई । जिस प्रकार महात्मा पुरुषों के जीवन-चरित्र हमें सिखलाते हैं कि हम क्योंकर उच्च कोटि के मनुष्य बन सकते हैं, उसी प्रकार उन्नत देशों का इतिहास किसी जाति को उच्च बनना सिखाता है ।

इतिहास का दूसरे विषयों से सम्बन्ध—भूगोल के

---

* इसी विचार से हमने 'भारतीय जागृति' में इन सब दृष्टियों से विचार किया है ।

सम्बन्ध में तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि इसका ज्ञान होना आवश्यक है, क्यों कि इसके बिना भिन्न भिन्न घटनायें ठीक ठीक समझ में नहीं आ सकती। तर्क का भी साधारण बोध अवश्य होना चाहिए; ऐसा न हो कि विद्यार्थी समझ बैठे कि यदि एक स्थान में किसी समय एक घटना लाभकारी सिद्ध हुई, तो वह सब स्थानों में और सदैव वैसी ही प्रमाणित होगी।

इतिहास के विद्यार्थी को अर्थ शास्त्र से भी निरा शून्य नहीं रहना चाहिए, क्योंकि इतिहास के पठन-पाठन में एक आंख प्रायः धन पर रखनी होती है; संसार में मनुष्यों के बहुत से सम्बन्ध, आविष्कार और आन्दोलन आदि के कारण आर्थिक ही होते हैं।

इतिहास की शिक्षा--इतिहास के ज्ञान के लिये विद्यार्थियों को आरम्भ में अपने राष्ट्रीय महापुरुषों का जीवन-चरित्र पढ़ना चाहिये। पश्चात, ज्यों ज्यों उनकी बुद्धि बढ़ती जाय, एवं जब वे भूगोल आदि अन्य विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लें, तब उनको अपने देश का इतिहास सीखना उचित है। इसके पश्चात्, संसार का संक्षिप्त इतिहास भी देखना चाहिए, क्योंकि इसके बिना सर्वव्यापी ऐतिहासिक नियम मालूम नहीं हो सकेंगे। प्रायः विद्वानों का मत है कि जिन पुरुषों

को राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करना हो, उन्हें यूरप का इतिहास भले प्रकार मनन करना चाहिए। साधारणतया उन देशों का इतिहास लाभकारी होगा जो पहले अवनति के गड्ढे में थे, और अब प्रकाश में आने का प्रयत्न कर रहे हैं; उदाहरणवत् रूस, मिश्र, तथा चीन। इनके अतिरिक्त उन देशों का इतिहास भी जानना आवश्यक है जिनसे हमारा घनिष्ट सम्बन्ध है, एव जिनकी गणना प्रथम कोटि के राष्ट्रों में है, जैसे इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, और अमेरिका आदि।

भिन्न भिन्न देशो का इतिहास हमें क्या उपदेश देता है, इसके लिए तो कई एक स्वतंत्र लेखों की आवश्यकता है। पर स्थूल दृष्टि से बात यह है कि इङ्गलैंड, जापान और अमरीका के इतिहास से वहां की क्रमश. धीरे धीरे हुई उन्नति का पता चलता है, और इटली और जर्मनी के इतिहास से उनकी एकता और राष्ट्रीयता की शिक्षा मिलती है। भगवान करे कि हम इस सुशिक्षा से यथोचित लाभ उठावें।

भारतवर्ष का इतिहास—भारतवर्ष के विषय में एक पक्ष के लोग कहते हैं कि यहा प्राचीन इतिहास नहीं मिलता, प्राचीन काल में यहां लोगों की रुचि इतिहास लिखने की ओर न थी। दूसरे पक्ष का मत है कि आर्य जाति ने इतिहास का महत्व अच्छी तरह समझ लिया था। 'इतिहास पंचमो

वेदः ' उक्ति से यह भली भांति सूचित है; और रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थ इतिहास ही तो हैं। इन दोनों पक्षों के कथन कुछ अश में सत्य हैं। हमारा प्राचीन इतिहास है तो सही, परन्तु वह उस ढग से नहीं है, जैसा कि आधुनिक इतिहासज्ञ पसन्द करते हैं। आज कल पाठक चाहते हैं कि इतिहास सरल सीधी भाषा में हो, उसमें अत्युक्ति, अलकार और विस्तार आदि उन बातों की आवश्यकता नहीं, जो कविता के शृंगार माने जाते हैं।

भारतवर्ष का, आधुनिक पद्धति का इतिहास प्रायः विदेशियों का लिखा हुआ है। और, अन्य देश-वासी बहुधा किसी जाति का इतिहास बिलकुल निष्पक्ष होकर नहीं लिख सकते, क्योंकि यह बात स्वाभाविक है कि उनको हमारे देश के लिए उतनी श्रद्धा और सहानुभूति कभी नहीं हो सकती, जितनी होनी चाहिए। क्या इंगलैण्ड का जातीय इतिहास फ्रांस-वासियों द्वारा लिखा गया है? नहीं। भारतवर्ष का इतिहास भी सुयोग्य भारतवासियों द्वारा ही लिखा जाना आवश्यक है। यद्यपि कुछ सज्जन जहां तहां इस विषय की खोज तथा शोध में लगे हुए हैं, तथापि अभी बहुत प्रयत्नों की आवश्यकता है। जिन विद्यार्थियों की इस ओर रुचि हो, वे बड़े होकर इस महान कार्य में भाग लेवें। वर्तमान दशा में इन्हें चाहिये कि वे अपने अध्यापकों के परामर्श से अध्ययन

के लिये अच्छी से अच्छी पुस्तकें लें, जिनसे उनके संस्कार आरम्भ से ही अच्छे बनें।

इतिहास की पुस्तकें—भारतीय इतिहास की अधिकांश पाठ्य पुस्तकों में प्रायः प्राचीन इतिहास बहुत कम दिया गया है। उसकी अपेक्षा मध्यकाल का, विशेषतया मुसलमान काल का इतिहास कहीं अधिक रहता है। वह बहुत कुछ पक्षपात-पूर्ण है, तथा उस से हिन्दुओं की सामाजिक, आर्थिक या राजनैतिक परिस्थिति का यथेष्ट परिचय नहीं मिलता। पाठ्य पुस्तकों में ईस्ट इंडया कम्पनी के समय का वर्णन अत्युक्तियों तथा भ्रमपूर्ण बातों से भरा रहता है, जिनसे हर प्रकार अंगरेज़ों की योग्यता और गौरव, तथा हिन्दुस्तानियों की हीनता सूचित होती है। विचारने की बात है कि जब हम आरम्भ में ही यह सीख लेते हैं कि प्राचीन काल में आर्य जाति के लोग भेड़ बकरी चराने वाले अशिक्षित, और असभ्य थे, मध्यकाल में उनमें एकता न रही, हिन्दुओं का तथा मुसलमानों का सदैव झगड़ा होता रहा, तथा, आधुनिक काल में योरपीय जातियों की तुलना में हिन्दुस्तानी शारीरिक मानसिक एवं नैतिक सभी दृष्टियों से हीन रहे, तो बड़े होने पर हम में आत्म-सम्मान तथा अपने पूर्वजों के प्रति यथेष्ट श्रद्धा का भाव कैसे उत्पन्न हो सकता है!

हर्ष की बात है कुछ समय से देश के विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है । श्री० आचार्य रामदेव जी, स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी, एक इतिहास प्रेमी आदि महानुभावों ने भारतवर्ष का इतिहास लिखा है, जिनमें उपर्युक्त दोष नहीं है। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न भागों अथवा भिन्न भिन्न समय से सम्बन्ध रखने वाली भी कुछ उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, यथा सिक्खों का उत्थान और पतन, मरहठों का उत्कर्ष, मेवाड़ का इतिहास, भारतीय जागृति, आदि। सम्राट अशोक, राणा प्रताप, शिवाजी, आदि कुछ ऐतिहासिक महापुरुषों के अच्छे अच्छे जीवन चरित्र भी छप गये हैं।

अभी तक इतिहास की पुस्तकों में घटनाओं का वर्णन प्राय. समय-क्रम के अनुसार किया गया है । ऐसी पुस्तकों की रचना अभी प्रायः नहीं हुई है, जिनमें संसार व्यापी विचार-तरंग की यथोचित चर्चा हो। उदाहरणत्, यह दिखाने का प्रयत्न बहुत कम किया गया है कि यदि भारतवर्ष में अठारहवीं उन्नीसवीं सदी में रक्त-पात, राज्य-धन-तृष्णा, अन्ध-विश्वास, एवं अस्वास्थ-प्रद रहन सहन था. और उद्योग धन्धों की कमी थी, तो और भी बहुत से देशों में थोड़ी बहुत ऐसी ही दशा थी। इसी प्रकार, यदि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां शान्ति सुव्यवस्था आदि का उदय हुआ तो इसका

श्रेय एक मात्र नयी शासन सत्ता को ही नहीं है, वरन् तत्कालीन विचार-लहर का भी इसमें बड़ा भाग है। आशा है, इस शैली की पुस्तकों की क्रमशः वृद्धि होगी।

---

(५)

आलेख्य

प्रत्येक पदार्थ का कोई न कोई रूप, रंग, आकार आदि होता है। जैसा कोई पदार्थ हमें दिखाई देता है, उसे वैसा ही चित्रित करना, आलेख्य 'ड्राइंग' का कार्य है। जिस प्रकार भाषण या लेखन कला से हम अपने मन के भाव प्रकट कर सकते हैं, उसी प्रकार चित्र कला या आलेख्य कला भी हमारे मनोभाव प्रकट करने का साधन है। इस में उन से कुछ विशेषता है। भाषण या लेखन द्वारा प्रगट किये हुए विचार कभी कभी वे व्यक्ति भी कठिनाई से जान सकते हैं, जिन्हें उस भाषा का सम्यग् ज्ञान हो, परन्तु आलेख्य द्वारा प्रकट किये हुए मनोभाव प्रायः सभी आदमी सरलता-पूर्वक समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ, एक आदमी ने हाथी नहीं देखा; उसे

उसकी ठीक ठीक कल्पना कराने के लिये, उस की समझ में आने वाली भाषा में ही बहुत सी बातें बतानी पड़ेंगी। और, यदि वह आदमी हम से दूर है, तो उस की समझ में आने वाली भाषा का उपयोग करते हुए, उसकी जानी हुई लिपि में वे सब बातें लिखकर देनी होंगी। परन्तु इतनी बातें बताने या लिख कर देने पर भी सम्भव है, उस के मन में हाथी की यथार्थ कल्पना न हो सके। इस के विपरीत, यदि उसे आलेख्य द्वारा हाथी का चित्र दिखा दिया जाय तो उसे सहज ही उसकी आकृति आदि का सम्यग्ज्ञान हो जायेगा।

चित्रलिपि—इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि चित्र लिपि अन्य लिपियों की अपेक्षा कितनी सुबोध है। परन्तु इस के साथ ही यह भी सत्य है कि बहुत से विचार क्रमबद्ध रूप से उपस्थित करने का कार्य चित्र-लिपि द्वारा सहज ही नहीं हो सकता, जितनी बातें ज़रा सी देर में और थोड़े से स्थान में लिखी जा सकती हैं, चित्रलिपि द्वारा व्यक्त करने में बहुत श्रम साध्य हो जाती हैं, और, फिर भी अस्पष्ट रह जाती है। भूगोल, इतिहास, विज्ञान आदि सम्बन्धी घटनाओं और सिद्धान्तों का यथेष्ट वर्णन चित्रलिपि द्वारा नहीं हो सकता। हां, इन विषयों के विवेचन में भी चित्रों तथा आलेख्य से बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

आलेख्य की शाखायें—आलेख्य के कई भेद हैं।

हम यहां केवल मुख्य मुख्य भेदों का ही परिचय देंगे। पहले ज्यामिति-आलेख्य ('ज्यामेट्रीकल ड्राइंग') का विचार करते हैं। अन्य आलेख्यों की अपेक्षा, इस में यह सुविधा है कि इस आलेख्य में सरल रेखायें खींचने का काम रूल और पैमाने के सहारे, तथा गोल रेखाएं बनाने का काम 'प्रकार' आदि की सहायता से, किया जाता है।

स्वतंत्रालेख्य में रूल या पैमाने की सहायता नहीं ली जाती। इस लिये यह ज्यामिति-आलेख्य की अपेक्षा कठिन होता है। इसके दो भेद हैं। स्वतन्त्र हस्तालेख्य ('फ्री हैंड ड्राइंग') में विशेषतया कलाई और अंगुलियों का अधिक उपयोग होता है। स्वतन्त्र भुजालेख्य ('फ्री आर्म ड्राइंग') में कन्धे से लेकर सारी भुजा का उपयोग होता है। इन दोनों प्रकार के आलेख्य में कोई चित्र या नक़्शा सामने रहता है, और उसे देखकर, उसकी आकृति का उतना ही, या उससे कुछ छोटा बड़ा दूसरा चित्र या नक़्शा बनाना होता है।

वस्तु-आलेख्य ('मोडल ड्राइंग') में हमारे सामने मनुष्य, पशु-पक्षि, पुष्प, वृक्ष आदि कोई वस्तु होती है (उसका चित्र नहीं), और, उसे देखकर उसकी आकृति का आलेख्य करना होता है। इसमें उपस्थित वस्तु की छाया और प्रकाश को ध्यान में रखकर, उसे भी चित्रित

जाता है। इसके अतिरिक्त, इसमें असली वस्तु के रूप के अनुसार विविध प्रकार के रंग भी दिये जाते हैं, जिससे आलेख्य उस वस्तु की आकृति से ज्यों का त्यों मिलने वाला होजाय। फल पत्तियों आदि प्रकृति-जन्य पदार्थों के आलेख्य को प्रकृति-आलेख्य ('नेचर ड्राइंग') कहते हैं।

स्मृति-आलेख्य अर्थात् 'मेमोरी ड्राइंग' में हमारे सामने किसी वस्तु का चित्र तो क्या, कोई वस्तु भी नहीं होती। स्मरण शक्ति के आधार पर, अथवा स्वयं किसी प्रकार के चित्र की कल्पना करके, उसका आलेख्य किया जाता है। इसका अभ्यास करने के लिये प्रारम्भिक दशा में कोई वस्तु पहले दो एक मिनिट देख लेते हैं, फिर उसे अपनी दृष्टि से दूर करके अपनी स्मृति के सहारे उसका आलेख्य करते हैं।

जब फूल पत्तियों आदि की कोई सुन्दर कल्पना करके उसका, पत्थर या लकडी की वस्तुओं में, अथवा चिक या छींट में, या दुशाले, साड़ी आदि की किनारी में, आलेख्य किया जाता है, तो उसे 'डिज़ाइन' कहते हैं।

आलेख्य और मानसिक विकास-- आलेख्य से मनोरंजन तो होता ही है। इसके अतिरिक्त इससे मनुष्यों की, वस्तुओं के रूप, रंग, आकार आदि निरीक्षण करने

की, शक्ति भी बढ़ती है। वह उनकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई आदि का बहुत कुछ ठीक अनुमान कर सकता है। और, उसके हाथ और अंगुलियों को ऐसा अभ्यास होजाता है कि वह उनकी आकृति को भली भांति चित्रित कर सकता है। किसी वस्तु की आकृति को अपने ध्यान में रखकर उसका चित्र बनाने में स्मरण-शक्ति का उपयोग होता है। इस प्रकार, आलेख्य से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। पुनः जब चित्रकार काग़ज़ या कपड़े आदि पर किसी कल्पित वस्तु का चित्र उतारना चाहता है, तो वह अपने मन में सुन्दर और प्रभाव-कारी चित्र प्रस्तुत करता है। इससे उसकी प्रतिभा का विकास होने में सहायता मिलती है।

आलेख्य से मनुष्य सौन्दर्य-प्रेमी बनते हैं, कुरुचि-पूर्ण, भद्दे चित्रों से घृणा करने लगते हैं, और उनका स्थान सुन्दर मन-मोहक आकृतियों को देते हैं। ऐसे संस्कारों वाले आदमी अपने घर, दफ़्तर, बाज़ार और सड़कों को भी साफ़ और सुन्दर रखने वाले होते हैं। वे सर्वत्र सौन्दर्य की सृष्टि तथा वृद्धि करने का प्रयत्न करते हैं।

शिल्प और आलेख्य—आलेख्य से शिल्प को महत्व-पूर्ण सहायता मिलती है। काष्ठकार, लुहार, कुम्हार, सुनार, तथा इंजिनियर आदि जिस जिस वस्तु का निर्म्माण करना

चाहते हैं, पहले उसके आकार प्रकार का चित्र अपने मस्तिष्क में बना लेते हैं, (कभी कभी काग़ज़ आदि पर बना कर अपने सामने रख लेते हैं), तभी तो वे निश्चित आकार प्रकार वाली वस्तु को प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि जितनी अधिक उन्नति किसी देश में आलेख्य की होगी, उतना ही वहां विविध शिल्पों की उन्नति और वृद्धि का मार्ग प्रशस्त होगा। साधारण शिल्पियों की इस ओर उदासीनता होने से हमारे नित्य काम में आने वाले पदार्थ—बर्तन, खिलौने, मकान, दरवाज़े, चारपाई और पीढ़े आदि-टेढ़े मेढ़े और भद्दे होजाते हैं। आलेख्य के सहयोग से ही इन वस्तुओं के सुडौल और सुन्दर बनने में सहायता मिलती है। बड़े शिल्पियों को भी आलेख्य की ऐसी ही आवश्यकता है। इसके बिना हमारे विशाल भवन, बड़े बड़े यन्त्र और नदियों के पुल तथा रेल, मोटर, हवाई जहाज़ आदि यथेष्ट रूप के बनने नितान्त कठिन हैं। इससे स्पष्ट है कि शिल्प की उन्नति बहुत सीमा तक आलेख्य पर निर्भर है।

आलेख्य का अन्य विषयों से सम्बन्ध—आलेख्य जानने वालों की लिखावट सुन्दर होती है, इससे आलेख्य का सुलेख से सम्बन्ध स्पष्ट है। भूगोल याद करने में नक़्शे की आवश्यकता होती है, इतिहास की घटनाओं को स्मरण

करने के लिये भी भौगोलिक परिस्थिति और मार्ग आदि की ठीक कल्पना होने से सुविधा होती है । इस विषय में भी आलेख्य से बड़ी सहायता मिलती है । रेखा गणित और विज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर देने में आकृति (Figures) और यन्त्रों के चित्र से विषय का स्पष्टीकरण होजाता है; इसमें भी आलेख्य का सम्बन्ध स्पष्ट है । इस प्रकार विविध विषयों के शिक्षण में आलेख्य का महत्व-पूर्ण स्थान है ।

आलेख्य की शिक्षा और सामग्री— साधारणतया छः सात वर्ष की उम्र से विद्यार्थी इधर उधर दीवारों आदि पर, तरह तरह की भली बुरी शक्लें बनाते देखने में आते हैं। इससे स्पष्ट है कि इसी उम्र से वे इस विषय की शिक्षा आरम्भ कर सकते हैं । यदि वे नियमित रूप से शिक्षा पाने लग जांय तो वे भद्दी और कुरुचि-पूर्ण आकृतियां न बनाकर सुन्दर चित्रों में अपनी प्रवृत्ति कर सकते हैं । इससे उनकी शक्ति सन्मार्ग में व्यय होगी और उसका क्रमशः विकास होगा । विद्यार्थी ज्यों ज्यो बड़ा होता जाय और भाषा, गणित भूगोल, विज्ञान, इतिहास आदि सीखता जाय, वह आलेख्य का उपयोग इन विषयों में कर सकता है । ज्यामितिक या स्वतन्त्र आलेख्य की सुगम आकृतियों से आरम्भ कर, क्रमश अन्य प्रकार के आलेख्यों के अधिकाधिक कठिन चित्रों का अभ्यास करना चाहिये ।

आलेख्य की शिक्षा के लिये विद्यार्थियों को काग़ज़ पेन्सिल, और 'ज्यामेट्रिकल बक्स' (जिसमें पैमाना, 'परकार' रबर, 'सैट स्क्वेअर', और 'प्रोटेक्टर' या चांदा होते हैं,) के अतिरिक्त कुछ अच्छे चित्र ('चार्ट') या नक़्शे, तथा भिन्न भिन्न आकृति के पिंड रखने चाहियें। यथेष्ट अभ्यास होजाने के पश्चात् तो घरों में नित्य काम में आने वाली वस्तुओं, तथा पशु-पक्षियों और फूल पत्तों आदि के ही आधार पर वह स्वयं नाना प्रकार के चित्र या 'डिज़ाइन' आदि बना सकते हैं और अपना शिक्षा क्रम आगे बढ़ा सकते हैं।

आलेख्य एक उत्तम कला है। शिक्षण के प्रत्येक अंग में इसकी उपयोगिता है। इससे जाति के बुद्धि-विकास, सभ्यता और मानसिक संस्कारों का परिचय मिलता है। प्रत्येक विद्यार्थी को इसे सीखना चाहिये।

---

(६)

विज्ञान

'विज्ञान' का अर्थ है, विशेष ज्ञान। किसी विषय के क्रम-बद्ध विशेष ज्ञान को उसका विज्ञान कह सकते हैं, परन्तु साधारण बोलचाल में इस शब्द का प्रायः संकुचित अर्थ किया जाता है, और, यह केवल पदार्थ विज्ञान का बोधक होता है। इस रूप में इसके कुछ मुख्य भेद ये हैं:—भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, यंत्र विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान, जल विज्ञान, खनिज विज्ञान, आदि।

विज्ञान का महत्व—विज्ञान का विषय बड़ा महत्व-पूर्ण है। बाबू द्वारिकानाथ जी मैत्र के शब्दों में* हम कह सकते हैं कि विज्ञान प्रकृति के गूढ़ तत्त्वों को बतलाने की कुञ्जी है। माया के आवरण को मुक्त करने, तथा किसी वस्तु के वास्तविक रूप और गुण के जानने के लिए गुरु स्वरूप है, और प्राकृतिक निहित तत्त्वों के उद्घाटन करने में गुप्त-चर है। विज्ञान कल्पतरु है, इससे जो वस्तु मांगिएगा

---

*"विज्ञान—शिक्षा और हिन्दी में उसकी आवश्यकता" से।

वही पाइएगा। धैर्य, निरन्तर श्रम और दृढ़ता की आवश्यकता है। सच है, 'जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ। यह वह शक्ति है जिससे प्रकृति देवी अनायास ही आधीन हो जाती है। दशोदि कपाल मानो विज्ञान के सामने हाथ-जोड़े खड़े हों। जल पर तो आधिपत्य जमाये बहुत दिन हुए। समुद्र देवता की क्या ताब कि चूँ तक कर सके! उनके वक्ष-स्थल पर से लाखों पोत आते जाते रहते हैं। थल का कहना ही क्या है, पृथ्वी बेचारी को जैसा नाच नचाओ, वह वैसा ही नाचने को प्रस्तुत है। वायु को भी अब वश में कर लिया है। बहुत दिनों से टालमटोल और युद्ध करने के पश्चात् वायु ने भी हार मानकर विज्ञान से सन्धि करली है। युद्ध-स्थल तक में हवाई जहाज़ का उपयोग किया जा सकता है इन्द्रदेव ने परास्त होकर अपना वज्रदंड विज्ञान को सौंप दिया है, जिसके प्रभाव से तार इत्यादि का काम बेधड़क चल रहा है। साइस! बलिहारी है तेरी महिमा की! असम्भव को सम्भव कर दिखाना तेरा ही काम है। जड़ पदार्थ का समूह मनुष्य की सी बातें करे! यह तेरे ही प्रताप का फल है कि बिना तार या बिना किसी लगाव के हज़ारों मीलों की बातें चुटकी बजाते ज्ञात हो जाती हैं। पृथ्वी पर की घटना की कौन कहे, ताराओं तक के समाचार मनुष्य के ज्ञानगोचर करा रही है।

विज्ञान से लाभ—विज्ञान बहुत उपयोगी है। इसकी सहायता से कृषि, शिल्प आदि की उन्नति होकर जीवन-निर्वाह थोड़े समयमें होजाता है, और शेष शक्ति को और समय मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के वास्ते लगाया जा सकता है। इसके अध्ययन से बुद्धि और तर्क-शक्ति का विकास होता है, तथा सामाजिक और धार्मिक अन्ध विश्वास दूर होते हैं। विज्ञान से चिकित्सा तथा चीराफाड़ी ('आपरेशन') में बहुत उन्नति होगयी है तथा होती जा रही है, बहुत से रोग पहले असाध्य समझे जाते थे, अब बड़ी सुगमता से उनका इलाज होजाता है। विज्ञान की सहायता से अन्धे बहरे, गूंगे आदि अपाहिजों को तरह तरह की शिक्षा देकर उनका जीवन अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रेल, तार, डाक, जहाज, टेलीफ़ोन, रेडियो आदि के आविष्कार तथा प्रचार होने से मनुष्य जाति में पारस्परिक सम्बन्ध और व्यवहार बढ़ता जारहा है; इससे हम दूर दूर रहते हुए भी एक दूसरे के दुःख सुख को जल्दी जान लेते हैं, तथा पहले की अपेक्षा अधिक सहायक हो सकते हैं।

विज्ञान पर दोषारोपण—कहा जाता है कि विज्ञान लोगों को नास्तिक बना देता है। हम यह स्वीकार करते हैं कि यदि आस्तिकता इसी में है कि मनुष्य को जिस शक्ति का पता लगे और जो पदार्थ उसके सामने आये, उसी की

वह पूजा करने लग जाय, तो विज्ञान अवश्य नास्तिकता का प्रचार करता है। पर असल बात तो यह है कि न आस्तिकता का अर्थ उपर्युक्त रीति से किया जाना चाहिये, और न विज्ञान नास्तिकता फैलाता है। विचार-पूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि विज्ञान और धर्म का परस्पर में विरोध नहीं है, वरन् विज्ञान धर्म का सहायक है। विज्ञान से हमें परमात्मा के परम वैभव का, उसकी सृष्टि के रहस्यों का पता लगता है। इससे हमारा ध्यान उस महान शक्ति की ओर आकर्षित होता है, जो अदृष्ट होने पर भी अखिल ब्रह्माण्ड का नियमपूर्वक शासन करती है, जो सब पदार्थों को विधिवत चलाती है। विज्ञान हमारे कल्पित भय और अन्ध विश्वास हटाकर हृदय में सत् विश्वास और तर्क-स्थित श्रद्धा उत्पन्न करता है।

यह भी कहा जाता है कि "पाश्चात्य देश इस विज्ञान के ही सहारे तो युद्ध और मनुष्य-संहार की सामग्री तैयार करते हैं। फिर इसकी प्रशंसा के इतने पुल क्यों बांधे जावें?" अवश्य ही यह सत्य है कि ये देश समय समय पर विज्ञान का दुरुपयोग करते नज़र आते हैं, परन्तु ध्यान रहे कि इससे दोषभागी वे देश ही बनते हैं, विज्ञान नहीं। एक विज्ञान ही क्या, किसी भी प्रकार का गुण क्यों न हो, मनुष्य चाहे तो उसका दुरुपयोग भी कर सकता है। यदि कोई आदमी

तलवार का भय दिखाकर किसी का धन लूट लेवे, तो इसमें तलवार का क्या दोष है ! तलवार तो आत्म-रक्षा का साधन है। इसी प्रकार विज्ञान द्वारा किसी को हानि पहुँचने से वह भी दोष का भागी नहीं बनाया जाना चाहिए. उसका तो उद्देश सुख-शांति प्रदान करना है। असल बात यह है कि जो शक्ति उपकार करने में समर्थ है, वह अहित भी कर सकेगी। हमारी बुद्धि इसी बात में है कि हम उसका सदुपयोग करें, और लाभ उठावें।

विज्ञान रहस्य—विज्ञान के कौन कौन से सिद्धान्त अभी तक विदित हुए हैं तथा उनसे मानव जाति का क्या क्या उपकार हुआ है, यह विषय बड़े ग्रन्थों का है। हमें यहां इतना ही देखना है कि विज्ञान का मूल तत्व क्या है। विज्ञान-शास्त्री बतलाते हैं कि हमारी आंखों के सामने जो अनेक घटनायें आये दिन होती रहती हैं, उनमें "क्यों" तथा "किस प्रकार" का प्रामाणिक एवं तर्क-संगत, उत्तर प्राप्त करना ही विज्ञान का जीवन है। इनमें से 'क्यों' का उत्तर अनेकशः नहीं भी मिलता, पर 'किस प्रकार' का उत्तर बहुत अंश तक मिलना शक्य है। बिजली, भाप, वायु, जल, गर्मी आदि की विविध शक्तियां क्यों अपना कार्य करती हैं, किस प्रकार मनुष्य जाति की शासक न होकर ये आज्ञाकारी सेवक बनायी जा सकती हैं, यह सब जानना विज्ञान के अन्तर्गत

है। जो अनेक प्रश्न मन में उठें, उनको दबाया न जाकर, उनका समुचित उत्तर ढूँडना ही वैज्ञानिक रहस्य है।

भारतवर्ष में विज्ञान की आवश्यकता—सोचने की बात है कि आज दिन योरप के देश क्यों इतने बढ़े चढ़े हैं। इंगलैंड और जर्मनी पर ही क्यों लक्ष्मी जी की विशेष कृपा है? अमेरिका निवासी क्यों मज़े उड़ा रहें हैं, तथा जापान में उन्नति सूर्य क्यों उगता आरहा है? बेचारे भारत-वासियों ने ही क्या अपराध किया है कि जो साल दर साल लक्ष्मी जी की पूजा करते रहने पर भी ये इस चंचल देवी के कृपा-पात्र नहीं बनते? न मालूम कितनों को पेट-भर अन्न ही नहीं मिलता, और कितनों को पालन-पोषण की चिन्ता में ही अपना तमाम समय बिता देना होता है। फिर, मानसिक उन्नति का तो ज़िकर ही कहां?

प्रिय पाठक गण! व्यग्र होने की कोई बात नहीं है। भारतवर्ष पर ईश्वरी कोप नहीं है। प्रकृति सबको समान दृष्टि से देखती है। उपर्युक्त समस्या का उत्तर अधिकांश में यह है कि इस वर्तमान कर्म-प्रधान युग में विज्ञान की सेवा के बिना, लक्ष्मी देवी प्रसन्न नहीं होती। जो देश या जो जाति, अब विज्ञान का समुचित स्वागत नहीं करती, वह स्वयं ही अपने बुरे दिनों का आवाहन करती है।

यह ज़माना कला-कौशल का है। मशीन, यन्त्र, या कलों

की बन आयी है। यदि इनका आविष्कार न हो, तो इनके उपयोग की कमी तो न रहनी चाहिये। किन्हीं कारणों से कहो, भारत का सम्बन्ध उन पाश्चात्य देशों से होगया है, जो पदार्थ-विज्ञान के लिये भरपूर आन्दोलन कर रहे हैं। यदि उनके सम्मुख खड़े रहने का साहस प्राप्त करना वाञ्छनीय है तो विज्ञान का आसरा लेना होगा।

विज्ञान-साहित्य—हम पहले कह आये हैं कि हमारे भाइयों ने अभी तक विज्ञान का यथेष्ट स्वागत नहीं किया। तब, यहां इस विषय के साहित्य की बहुत कमी होना स्वाभाविक ही है। खैर, यह सौभाग्य की बात है कि जहां हिन्दी भाषा के अन्य अंगों की पूर्ति का उद्योग हो रहा है, कुछ कर्मवीरों ने विज्ञान-साहित्य पूर्ण करने का भी बीड़ा उठाया है। कुछ वर्षों से प्रयाग में एक विज्ञान परिषद स्थापित है, जिसकी ओर से इस विषय का एक मासिक पत्र भी निकल रहा है। उक्त समिति ने कई उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। और आशा है कि उसके द्वारा अन्य ग्रन्थ भी क्रमशः प्रकाशित होते रहेंगे। कुछ पुस्तकें भिन्न भिन्न लेखकों ने व्यक्तिगत रूप से भी लिखी हैं।

आज कल कुछ पत्र पत्रिकाओं में विज्ञान सम्बन्धी लेख नियमित रूप से निकलते हैं। विद्यार्थियों को चाहिये कि प्राप्त सामग्री से सम्यग् लाभ उठावें।

विज्ञान की शिक्षा—प्रारम्भिक अवस्था में विद्यार्थी विज्ञान के नियम नहीं समझ सकते, और न उनके सम्बन्ध में विविध प्रयोग ही कर सकते हैं। इस लिये उन्हें वैज्ञानिक शिक्षा का आरम्भ प्रकृति पाठ या वस्तु पाठ से करना चाहिये। वे साधारण जीव जन्तु, फल, पौधे, खिलौने, पशु पक्षी आदि का ध्यान-पूर्वक निरीक्षण करें, और उनका वर्णन करें। वे इस बात की सम्यग् परीक्षा करके देखें कि उनके कथन में कहां तक सत्यता है। उन्हें भिन्न भिन्न वस्तुओं की परस्पर में तुलना करने का भी अभ्यास करना चाहिये। बहुधा जिन चीज़ों को हम प्रति दिन देखते सुनते हैं, उनका भी हमें यथार्थ बोध नहीं होता। विज्ञान के विद्यार्थियों को स्थूल परिचित पदार्थ अपने सामने रखकर उनका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उन्हें उनके नाम, लम्बाई, चौड़ाई, रूप, रस, गन्ध, गुण और प्रयोग की जानकारी होनी चाहिये। उन्हें प्रत्येक वस्तु की विविध बातें परीक्षा करके देखनी चाहियें। ज्यों ज्यों उनकी बुद्धि का विकास होगा, उनकी रुचि काठिनतर विषयों की ओर बढ़ेगी। उन्हें समझने के लिये बड़े बड़े तथा सूक्ष्म यन्त्रों एवं प्रयोगशालाओं की आवश्यकता होगी। भाषा-शिक्षा प्राप्त कर चुकने वाले विद्यार्थी पुस्तकों से बड़ी सहायता ले सकते हैं।

(७)

अर्थ-शास्त्र

प्राक्कथन—'अर्थ-शास्त्र' शब्द से सर्व साधारण परिचित नहीं। ज्योतिष-शास्त्र, न्याय शास्त्र, रसायन-शास्त्र, छन्द-शास्त्र, इत्यादि शास्त्रों के नाम तो बहुधा प्रयोग में आते हैं, परन्तु अर्थ-शास्त्र किस पदार्थ का द्योतक है, इससे मानव जाति का क्या हित-साधन होता है, इसके अज्ञान से प्रकृतिदत्त पदार्थों से हरा भरा देश भी किस प्रकार दरिद्रता के चंगुल में फँस जाता है,—यह जानने वाले महानुभाव यहां इने गिने ही हैं। यह देख कर किसी का ऐसा विचार कर बैठना साहजिक है कि भारतवर्ष ने कभी इस विषय का यथोचित महत्त्व नहीं जाना।

हम यह स्वीकार करते हैं कि यहां इस विषय की ओर पिछली कई शताब्दियों में बड़ी उदासीनता रही है; और इस समय भी यथेष्ट ध्यान नहीं दिया जा रहा है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यहां अति प्राचीन काल में इस विद्या का अध्ययन और मनन आरम्भ हो गया था। यहां के

प्रसिद्ध विद्वान कौटिल्य (चाणक्य), वृहस्पति और उशन आदि के अर्थ-शास्त्र, तथा अर्थवेद नाम के उपवेद का, संसार भर के अर्थ-शास्त्र सम्बन्धी साहित्य में प्राचीनता, मौलिकता, तथा गहनता की दृष्टि से विशेष स्थान है।

नाम और व्याख्या—इस शास्त्र को (अर्थ-शास्त्र के अतिरिक्त) सम्पत्ति-शास्त्र, धन-शास्त्र, कुबेर की विद्या, इत्यादि नाम भी दिये जाते हैं। यह शास्त्र सामाजिक मनुष्य के धन सम्बन्धी विविध प्रकार के प्रयत्नों की खोज करता है, और उनके सिद्धान्तों को निश्चित करता है ।

स्मरण रहे कि इस व्याख्या में 'धन' का अर्थ केवल मोहर, रुपये, पैसे, आदि सिक्कों अथवा सोना, चांदी आदि धातुओं से ही नहीं है, इसके अन्तर्गत वे सब पदार्थ समझे जाते हैं, जिनसे मनुष्य की किसी भी प्रकार की आवश्यकता पूर्ण होती हो और जिनके बदले में दूसरी उपयोगी वस्तुएं मिल सकती हों। उदाहरणवत् कोयला, लोहा, लकड़ी, अन्न आदि चीज़ें भी धन हैं। पुनः इस व्याख्या में "सामाजिक मनुष्य" शब्द आया है इससे अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है जो समाज में अर्थात् दूसरे आदमियों के साथ मिल जुलकर रहता हो । ऐसे मनुष्यों को विविध प्रकार की आवश्यकताएं रहती हैं, जिनको पूर्ण करने के लिये उन्हें भिन्न भिन्न रूप से परिश्रम

करना पड़ता है और एक दूसरे की सहायता लेनी पड़ती है।

राष्ट्रीय अर्थ-शास्त्र—अर्थ-शास्त्र का विज्ञान भाग अर्थात् इस शास्त्र द्वारा अन्वेषित सिद्धान्त सब देशों के लिये समान हैं, और, सब ही उनसे लाभ उठा सकते हैं। परन्तु भिन्न भिन्न देश किसी एक समय में समान उन्नत नहीं होते, और पृथक् पृथक् परिस्थिति में उनको अलग अलग साधनों और नियमों की आवश्यकता होती है। इसलिये इस शास्त्र का व्यवहारिक भाग प्रत्येक देश की तत्कालीन अवस्था के अनुकूल, पृथक् पृथक् होता है। इसे वहां का राष्ट्रीय अर्थ-शास्त्र कहते हैं।

अर्थ शास्त्र के भाग—सुभीते और सरलता के लिये इस शास्त्र के मुख्यतः चार भाग किये जाते हैं, (१) उत्पत्ति, (२) उपभोग, (३) विनिमय, और (४) वितरण। इनका अर्थ और क्षेत्र स्पष्ट करने के लिये इनके अन्तर्गत विचार किये जाने वाले विषयों के उदाहरण कुछ दिये जाते हैं।

उत्पत्ति—उत्पत्ति के विषय को समझने के लिये पहले यह जान लेना चाहिये कि धनोत्पत्ति के साधन (क) प्रकृति, अर्थात् भूमि, जल और वायु, (ख) श्रम, (ग) पूंजी, और (घ) व्यवस्था हैं। इनमें से प्रकृति के विषय में यह विचार किया जाता है कि हमारे देश के भिन्न भिन्न

प्रान्तों में पृथक् पृथक् कच्चे पदार्थों की उत्पादक शक्ति क्या है ? यथेष्ट नहीं, तो क्या कारण है ? विदेशों में इसकी क्या मात्रा है ? हमें उत्पादक शक्ति की वृद्धि के लिये किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिये ? वृद्धि किस हद तक होनी सम्भव है ? पश्चात् क्या नियम काम करता है ?

इसी प्रकार, श्रम के नियम में यह विचार करना होता है कि देश का एक श्रमजीवी एक दिन के काम करने वाले घण्टों में श्रम करके कितना पदार्थ उत्पन्न कर सकता है ? किस प्रकार के रहन सहन और शिक्षा से वह अपने कार्य क्षेत्र में अधिक चतुर हो सकता है ? उसके स्वास्थ्य का समुचित विचार रक्खा गया है या नहीं ? यदि उक्त श्रमजीवी अपने सीधे साधे औज़ारों को उठाकर रखदे और भाफ, पानी, हवा तथा बिजली से चलने वाली कलों (मशीनों) से काम लेने लगे तो उसका क्या प्रभाव पड़ेगा और उत्पत्ति कितनी बढ़ेगी ? श्रम-विभाग किन किन हालतों में और कहां तक होना शक्य है ? इससे लाभ ही लाभ है, अथवा कुछ हानि भी है ?

पूंजी के बारे में यह सोचना होता है कि धन किस अवस्था-विशेष में पूंजी बन जाता है ? वह किस प्रकार संचित किया जाता है, तथा इससे और अधिक धन की उत्पत्ति होती है ? व्यवस्था के विषय में स्मरण रहे कि पहले पूंजी

के मालिक ही सब काम की व्यवस्था कर लिया करते थे। अब एक अलग व्यवस्थापक अर्थात् मनेजर या सञ्चालक की आवश्यकता क्यों हो चली ? इस पद्धति से क्या लाभ एवं क्या क्या हानि है ?

उपयोग—धन की उत्पत्ति इसलिए की जाती है कि उसके उपभोग का आनन्द मिले। परन्तु यदि उपभोग अनुचित रूप से हो तो कोई देश समृद्धशाली नहीं हो सकता, चाहे उसमें धन कितना ही क्यों न उत्पन्न होता हो। इसलिए ऐसा नहीं होना चाहिए कि गरीब मजदूर या कृषक तो जैसे तैसे पसीना बहायें, और दुष्ट अत्याचारी जबरदस्ती से और दम्भी पाखंडी अपने वाग्जाल से मजा उड़ावें। मुफ्तखोरों की संख्या को देश से समूल हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। हां, अनाथ बालक, स्त्रियों तथा लूले लङ्गड़े अपाहजों को सदैव दया-पात्र समझकर उनकी आजीविका का यथेष्ट प्रबन्ध कर देना चाहिए। इनमें जो पैसा खर्च हो, उसका भार यथा-शक्ति सहन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

कुरीति तथा ऐश आराम में पैसे को बरबाद नहीं करना चाहिए शराब आदि नशों का उपभोग यथासम्भव बन्द कर देना उचित है। पैसे को जमीन में गाड़ना अथवा बेकार पड़े रहने देना मूर्खता है, क्यों कि ऐसा करने से यह

धन के उत्पादन में सहायक नहीं हो सकता, और इसका होना न होना देश के लिए, तथा जमा करने वाले के लिए विशेष अन्तर नहीं रखता।

वितरण—वितरण में यह विचार होता है कि जो धन कतिपय मनुष्यों की सहायता से उत्पन्न किया गया है, उसका कितना हिस्सा किस व्यक्ति को मिलना चाहिए। भूमि के मालिक को क्या लगान मिलना चाहिए? श्रम-जीवी की मज़दूरी क्या होगी, रुपये (पूँजी) वाले को सूद क्या मिलेगा, व्यवस्थापक को क्या मुनाफ़ा (और यदि वह व्यवसाय-पति का एक सेवक मात्र है, तो क्या वेतन) मिलेगा?

विनिमय—अर्थ शास्त्र के इस भाग में यह विचार किया जाता है कि मानव जाति के इतिहास में जब सिक्के ने पदार्पण नहीं किया था, तब समाज का वह काम जो अब रुपये पैसों से होता है, कैसे निकलता था? उसमें क्या क्या असुविधायें थी? वर्त्तमान सिक्के के पूर्व जन्मों में क्या क्या रूप थे, जिनमें से गुज़रते गुज़रते अन्ततः इसने क्रमशः यह उन्नतावस्था प्राप्त की? आज कल यह कौनसे रंग बिरंगे रूपों से संसारी मनुष्य को मुग्ध करता है? काग़ज़ के नोट, हुंडी, चेक और बिल, ताम्बे के पैसे, गिलट की इकन्नी, चांदी

की दुअन्नी, चवन्नी, अठन्नी, और रुपये, सोने की गिन्नी (मोहर) तथा हमारी प्राचीन मुद्रा—इनमें से कौनसी बीस बिस्सों खरी और कौन सी कहीं खोटी कहीं खरी समझनी चाहिए? इन भिन्न भिन्न रूपों की मुद्रा की आवश्यकता किस किस समय अधिक प्रतीत होती है?

बैंक क्यों खोले जाते हैं? इनके कितने भेद हैं? प्रत्येक में क्या विशेष सुभीता है? इनसे कृषकों को क्या लाभ हो सकता है? बैंकों का दिवाला मुख्यतः किन कारणों से निकलता है? उनसे बचने के क्या उपाय है?

दूसरे देशों से व्यापार करने में क्या लाभ होते हैं? क्या कुछ हानि भी होजानी सम्भव है? बाहर से आये माल की अपेक्षा, यदि कोई देश स्वयं अधिक माल बाहर भेजता है तो क्या यह उसके सम्पत्तिशाली होने का लक्षण है? बाहरसे आने वाले एवं देश से बाहर जाने वाले माल पर चुंगी लगनी चाहिए या नहीं? अर्थात् व्यापार बाधित होना चाहिए अथवा मुक्त? किन किन अवस्थाओं में, किसी देश के लिए कौनसी पद्धति हितकर होगी? देश की कारीगरी व दस्तकारी शिल्प व हुनर बढ़ाने के क्या उपाय हैं?

उपर्युक्त तथा, इस प्रकार की अन्य बातों पर अर्थ शास्त्र में यथोचित विचार होता है।

अर्थ शास्त्र के पढ़ने की आवश्यकता—बनावटी वार्तालाप या व्यवहार किसी का चाहे जो हो, समाज में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को धन की आवश्यकता होती है। प्रथम पेट भरने और पश्चात् क्रमशः वस्त्र, आभूषण, गृह-निर्माण, आदि, शारीरिक या मानसिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली वस्तुओं के लिए, धन सबको चाहिए। अतः धन सम्बन्धी शिक्षा देने वाली विद्या के प्रति उदासीनता न होनी चाहिय। स्वयं अपनी तथा अपने बन्धुओं का उत्थान करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को इस विषय का अध्ययन करना आवश्यक है।

अर्थ शास्त्र की शिक्षा—इस शास्त्र के अध्ययन के लिये भूगोल, गणित, तर्क इतिहास आदि कई विषयों के साधारण ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिये छोटी श्रेणियों के विद्यार्थियों को इसे समझना कठिन होता है। माध्यमिक श्रेणी वाले इस विषय की मोटी मोटी बातें अच्छी तरह समझ सकते हैं। उन्हें इसका साधारण ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिये। गूढ़ सिद्धान्तों का विचार, वे पीछे क्रमशः कर सकते हैं।

अर्थ शास्त्र सम्बन्धी साहित्य—कैसी विलक्षण स्थिति है कि पाश्चात्य देशों में जहां लक्ष्मी की कृपा बहुत है, वहां तो अर्थ शास्त्र की अनेक पुस्तकें प्रति वर्ष निकलती

रहती हैं, परन्तु इधर भारतवर्ष में लोगों की आर्थिक दशा बहुत हीन होते हुए भी, इस विषय का बहुत कम साहित्य प्रकाशित होता है। फिर यहां जो साहित्य इस विषय का निकलता है, उसका भी यथेष्ट प्रचार नहीं होता। हिन्दी भाषा में अर्थ शास्त्र सम्बन्धी साहित्य की दशा कैसी है, इस पर हमने एक स्वतंत्र निबन्ध (ट्रैक्ट)* में विचार किया है। यहां हम युवकों के उपयोगी दो एक पुस्तकों का ही उल्लेख करते हैं। अर्थ शास्त्र प्रवेशिका, अर्थ विज्ञान, भारतीय अर्थ शास्त्र, आदि पुस्तकें इस विषय के प्रारम्भिक ज्ञान के लिये अच्छी हैं।

आओ, इस विषय को भली प्रकार विचारें, जिससे इस पुण्य भूमि भारत में सब बन्धुओं की आजीविका का समुचित प्रबन्ध हो, और उन्हें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति का यथेष्ट अवसर मिले।

---

(८)

नीति

व्याख्या—मनुष्य, समाज में मिलजुल कर रहते हैं। उनका परस्पर में भिन्न भिन्न प्रकार का सम्बन्ध होता है। कोई किसी का भाई है, कोई बहिन है, कोई माता है, कोई पिता है, कोई हमारे नगर, प्रान्त, या देश का निवासी है, कोई शासक है, कोई नागरिक इत्यादि। प्रत्येक मनुष्य का दूसरे मनुष्यों या समाज या राज्य के प्रति क्या कर्तव्य है, तथा उसका क्या अधिकार है, यह बतलाने वाली, पारस्परिक सद्व्यवहार की शिक्षा देने वाली, विद्या नीति कहलाती है।

भेद—नीति के अनेक भेद हैं। व्यापार सम्बन्धी नियम "व्यापार नीति" के अन्तर्गत हैं। रण क्षेत्र में जो नियम व्यवहृत होते हैं, उनके निर्धारित करनेवाली नीति "रणनीति" कहलाती है। प्रजा का राजा के प्रति क्या कर्तव्य है राजा को किन क़ानूनों द्वारा प्रजा का हित साधन करना चाहिए, इस विषय की मीमांसा करने वाली नीति को "राजनीति" कहते हैं; इत्यादि।

बहुधा ऐसा होता है कि किसी विशेष घटना के विषय में,

एक स्थिति में, एक नियम काम देता है; अन्य स्थिति में, वैसी ही घटना के विषय में वह रद्द होजाता है और दूसरा नियम प्रयोग में लाया जाता है। दृष्टान्त के लिए जब कोई आदमी किसी को मार दे तो साधारण नियम यह है कि वह मृत्यु दंड का भागी हो, परन्तु यदि मृत पुरुष डाकू, स्वदेश-द्रोही या दुष्ट आक्रमणकारी हो तो उसके मारनेवाले पर कोई अभियोग न लगाया जायगा, वरन् वह स्वदेश-भक्त की पदवी से गौरवान्वित होता हुआ, पुरस्कार का अधिकारी होगा। देश-काल के भेद से प्रचलित नीति में कुछ भेद आ ही जाया करता है।

नीति का महत्व—संसार का सुख या शान्ति, सब नीति पर ही अवलम्बित है। इस कथन में अत्युक्ति की छटा प्रतीत हो सकती है, परन्तु विचार करने पर इसकी सत्यता प्रकट होजाती है। कल्पना करो कि यदि मनुष्य समाज-नीति को तिलाञ्जलि दे दे, उचित अनुचित, धर्म अधर्म, न्याय अन्याय का विचार न कर, प्रत्येक व्यक्ति अपने से कमज़ोर को मारने, काटने, उसका धर्म नष्ट करने और धन-द्रव्य छीन लेने में संकोच न करे तो यह ससार कितनी देर ठहरे? 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के नियम का अबाध्य रूप से चलना, दूसरे शब्दों में संसार का संहार होना है। यदि दस आदमी मुझ से निर्बल हों, और मैं उनको पद-दलित करने

लग जाऊँ, तो मुझे भी कोई गुरू मिल ही जावेगा, फिर मेरी ख़ैर कहां ! यही विचार है जो अधिकांश लोगों का अपनी अपनी अधिकार-सीमा के अन्दर रहने पर बाध्य करता है, और जिससे सब आदमी नियमानुसार काम चलाते हैं और समाज नियम-बद्ध रहता है।

मनुष्य को वास्तविक मनुष्यत्व, नीति के ही द्वारा प्राप्त होता है। जो मनुष्य नीति-भ्रष्ट हैं, जिनमें अहंकार, लोभ, मोह, छल, कपट, चोरी, मिथ्या-भाषण, व्यभिचार आदि अमानुषिक प्रवृत्तियां हैं, वे चाहे जितने शिक्षित क्यों न हों, मानव समाज के योग्य नहीं। वे मनुष्यश्रेणि की कलंक-कालिमा मात्र हैं। इसलिये हमें चाहिये कि अन्य शिक्षा प्राप्त करते समय नीति के भी महत्व को ध्यान में रखें, और यथोचित नीति-शिक्षा ग्रहण करते जावें।

नीति शिक्षा—नीति शिक्षा के दो भेद हैं—(१) ज्ञानात्मक, और (२) क्रियात्मक। ज्ञानात्मक शिक्षा से अभिप्राय नीति के मूल तत्त्वों और सिद्धान्तों से परिचय पाना है। यह कार्य व्याख्यान और उपदेशों के सुनने तथा स्वाध्याय करने से होता है। मनुजी महाराज के बतलाये हुए धर्म के दस लक्षणों (धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इंद्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध,) में किसी न किसी रूप से, प्रायः सब नतिक गुण आ गये हैं, और सरल व्याख्या द्वारा,

इनका बोध सहज ही कराया जा सकता है। इन गुणों को सब ही सभ्य मनुष्य हितकर समझते हैं, किसी का मत भेद नहीं। इनका भली भांति प्रचार होना चाहिये।

परन्तु यह जान लेना ही पर्याप्त नहीं है कि अमुक बात ग्राह्य है या त्याज्य। आवश्यकता इस बात की है कि हम उक्त सिद्धान्तों को व्यवहार में लावें और उनका अभ्यास करें। इसलिए केवल ज्ञानात्मक शिक्षा से काम नहीं चल सकता, क्रियात्मक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है, और, यह निस्सन्देह कठिन भी है। इसमें सुनना या पढ़ना लाभकारी हो सकता है, परन्तु विशेष प्रभाव आंखों देखे उदाहरण का पड़ता है। इसलिये विद्यार्थियों को अच्छी संगति में, तथा उत्तम गुणवालों के निरीक्षण में, रहना चाहिये।*

---

* खेद है कि माता पिता अपनी सन्तान को सदाचारी बनाने के विषय में अपना विशेष उत्तरदायित्व नहीं समझते। वे इस कार्य को अध्यापकों पर छोड़ देते हैं। इधर, शिक्षा संस्थायें भी इस ओर बहुत कम ध्यान देती हैं। कहीं कहीं धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत नीति-शिक्षा की व्यवस्था होती है। परन्तु धर्म के सम्बन्ध में मत मतान्तरों और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के विवाद-ग्रस्त विषय उपस्थित होने के कारण, सरकारी संस्थाओं में ही नहीं, प्राइवेट स्कूलों में भी प्रायः इसकी उपेक्षा ही की जाती है।

बहुधा, अच्छे कामों में उत्साह बढ़ाने के लिये और बुरे कामों से चित्त हटाने के लिये दंड की परिपाटी का अवलम्बन किया जाता है। विद्यार्थियों को समझ लेना चाहिये कि अच्छा कार्य करने से चाहे कुछ कष्ट भी उठाना पड़े, उसका अन्तिम परिणाम हितकर ही होता है। इसलिये, पुरस्कार मिले या न मिले, उन्हें सदैव अच्छे कार्य करते रहना चाहिये। इसी प्रकार बुरे काम हानिकारक होने के कारण, त्याज्य हैं, उनका तत्कालिक दंड न भी मिले तो भविष्य में कभी न कभी उनका कुफल अवश्य भुगतना पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को यह आदत डालनी चाहिये कि सोने से पहले प्रत्येक रात्रि को वे अपनी तमाम दिनचर्या पर एक दृष्टि डाल कर शुद्ध हृदय से यह विचार कर लिया करें कि हमने कोई अनुचित कार्य तो नहीं कर डाला है, यदि कोई होगया हो तो उससे बचें, एवं जो अच्छा परोपकारी काम बन आया हो तो उस पर अभिमान न करते हुए, भविष्य में पुनः वैसे अवसर से लाभ उठाने की चेष्टा करें।

हिन्दी-भाषा में नीति की अधिकांश पुस्तकें तो प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद मात्र हैं, या उनके आधार पर

लिखी हुई हैं; यथा शुक्र नीति, भर्तृहरि नीति-शतक, चाणक्य-नीति, विदुर नीति, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, बालनीति, इत्यादि। नीति की आधुनिक युवकोपयोगी पुस्तकों में से जो हमारे देखने में आयी हैं, उनमें से कुछ निम्न लिखित हैं—चरित्र शिक्षा, चरित्र गठन, धर्म शिक्षा, बाल सभ्यता, बाल नीति कथा, आदि। यह तो हुई साधारण नीति की बात, अब कुछ राजनीति के विषय में उल्लेख करते हैं।

राजनीति—आज कल रजनीतिका महत्व बहुत बढ़ा हुआ है। यह कहना कुछ अत्युक्ति नहीं है कि इस युग में राजनीति ही राष्ट्रों का जीवन है। जनता के सब कर्त्तव्य कर्मों का राजनीति से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। जिस देश की राजनैतिक परिस्थिति अनुकूल नहीं होती, वहां के निवासी समुचित रूप से न शिक्षा पा सकते हैं, न साहित्य की उन्नति कर सकते हैं, न अपने स्वास्थ की रक्षा कर पाते हैं। यहां तक कि आर्थिक उद्धार और समाज सुधार का कार्य भी अब राज्य की सहायता के आश्रित रहता है। पराधीन देश के निवासियों की हर प्रकार से अवनति हो जाती है। इसलिये प्रत्येक देश के नागरिकों का कर्त्तव्य है, कि यदि उनका देश पराधीन है तो उसकी राजनैतिक मुक्ति के लिये, और यदि वह स्वाधीन है तो उसकी स्वाधीनता की रक्षा के लिये, जी जान से उद्योग करते रहें। यही तप है, यही व्रत है, यही पूजा पाठ है।

राजनैतिक साहित्य—स्वाधीनता-प्रेमी नागरिकों के मनोरंजन की सामग्री राजनैतिक साहित्य है। हमारे यहां यद्यपि राजनीति सम्बन्धी प्राचीन साहित्य कुछ कम नहीं, परन्तु आधुनिक साहित्य की स्थिति बहुत असन्तोष-प्रद है।* अब कुछ समय से इस देश में राजनैतिक विषयों की चर्चा उत्तरोत्तर बढ़ती जारही है, और स्वराज्य प्राप्ति के लिये जनता नाना प्रकार के त्याग कर रही है, तथा कष्ट सह रही है। इससे पत्र पत्रिकाओं में राजनीति सम्बन्धी विचार अधिक प्रकाशित होने लगे हैं, तथापि एक मात्र राजनीति की चर्चा करने वाले पत्र पत्रिकायें यहां इनी गिनी हैं। राजनीति के ग्रन्थों में यद्यपि उच्चकोटि के उपन्यास और नाटकों की रचना के लिये भी अभी बहुत कुछ कार्य होना शेष है, परन्तु राजनैतिक सिद्धान्त और शासन पद्धति विषयक साहित्य में तो अत्यन्त ही शोचनीय कमी है। इस सम्बन्ध में जो थोड़ा सा कार्य हुआ है, वह विशेषतया पिछले बीस वर्ष का ही है। यों तो ज्ञान-मण्डल काशी, नागरी प्रचारणी सभा काशी, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता, आदि कई संस्थाओं ने राजनैतिक साहित्य की वृद्धि में योग दिया है, पर साधारण विद्यार्थियों के लिये भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन, की सरल भारतीय शासन,

* हमारी 'हिन्दी भाषा में राजनीति' देखिये।

नागरिक शिक्षा, भारतीय शासन* निर्वाचन नियम, ब्रिटिश साम्राज्य शासन आदि पुस्तकें बहुत उपयोगी हैं।

राजनीति शिक्षा—राजनैतिक साहित्य की वृद्धि और प्रचार बहुत कुछ शिक्षा पद्धति पर निर्भर होता है। हमारे यहां ब्रिटिश भारत या देशी राज्यों के कुछ थोड़े से ही स्थानों में इस बात की व्यवस्था है कि मिडिल या ऐंट्रेंस के विद्यार्थियों को इस विषय का कुछ बोध होजाय। अधिकतर स्थानों में तो विद्यार्थी बी. ए. पास करके डिग्रीधारी तक बन जाने पर भी, अपने देश के शासन यन्त्र के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि राज्य में क़ानून किस प्रकार बनते हैं, उनमें सुधार किस तरह हो सकता है, और किस अधिकारी के क्या अधिकार हैं। नवयुवक ही देश के भावी सूत्रधार और संचालक होते हैं, उनके लिये यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि उनके देश की शासन पद्धति कैसी है। साधारणतः माध्यमिक शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी इस विषय की मोटी मोटी बातें आसानी से समझ सकते हैं, उन्हें अपने ग्राम या नगर प्रबन्ध से आरम्भ करके, क्रमशः अपने प्रान्त के, तथा पीछे देश भर के शासन यन्त्र से परिचित होजाना चाहिये। तदनन्तर वे राजनीति शास्त्र के विविध सिद्धान्तों तथा अन्य देशों में प्रचलित शासन

* इसके छः संस्करण हो चुके हैं।

प्रणालियों एवं उनके गुण दोषों का विचार कर सकते हैं। स्मरण रहे कि जो विद्यार्थी अपने देश की भी शासन-पद्धति से परिचित नहीं होते, उनकी शिक्षा अधूरी है, उसका मूल्य बहुत थोड़ा है।

ज्ञानात्मक शिक्षा पाकर, विद्यार्थियों को चाहिये, कि बड़े होने पर वे क्रमशः स्थानीय म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला बोर्डों, प्रान्तीय या केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाओं में यथोचित भाग लें, और इन संस्थाओं में राजनीति की व्यवहारिक शिक्षा पाते हुए स्वदेशोन्नति के लिये प्रयत्नशील रहें।

(९)

तर्क-शास्त्र

तर्क-शास्त्र वह विद्या है जो मानवी विचारों से सम्बन्ध रखने वाले आवश्यकीय नियमों का अन्वेषण करे। मनुष्यों के हृदयंगत विचार भाषा द्वारा प्रकट होते हैं। अतएव इस विद्या से जहां शुद्धता-पूर्वक मनन करने की शिक्षा मिलती है, वहां साथ ही यह भी बोध होता है कि हम अपने विचार किस प्रकार प्रकट करें कि हमारे वाक्यों में परस्पर विरोध न हो, एवं हम दूसरों के कथन का अभिप्राय भी ठीक ठीक समझने में त्रुटि न करें।

यह बात प्रत्यक्ष है कि जब तक हमें शुद्धता-पूर्वक मनन या चिंतन करना न आयगा, तब तक हम किसी विद्या के सम्बन्ध में न कोई खोज कर सकेंगे, और न आविष्कारों के विषय में कुछ सत्य सिद्धान्त ठहरा सकेंगे। इससे ज्ञात होगा कि तर्क-शास्त्र सब शास्त्रों से अधिक व्यापक तथा विस्तृत है, और सब शास्त्रों को इसकी आवश्यकता रहती है। अन्य शास्त्र तो किसी एक विशेष विषय का ही अनुसन्धान करते हैं, परन्तु तर्क शास्त्र उन मूल तत्त्वों का

चिन्तन करता हैं जिसके प्रयोग की सब शास्त्रों को ज़रूरत होती है। इसी लिये इस शास्त्र को 'विज्ञानों का जन्म दाता' कहा जाता है।

तर्क शास्त्र के भाग; विगमन या परिणामिक—तर्क शास्त्र के दो भाग हैं, (१) विगमन या परिणामिक, और, (२) निगमन या अनुमानिक। पहले विगमन को लीजिये। किसी विशेष स्थिति मे एक घटना किसी विशेष रूप से होती देखी गयी। बार बार भिन्न भिन्न समय पर परीक्षा लेने से उस घटना के प्रकार में अन्तर नहीं आता। इस अनुभव से एक साधारण सिद्धान्त स्थिर किया जाता है। जब वह सिद्धान्त कुछ विषयों में सत्य प्रमाणित हो चुकता है, तब उसकी सार्वभौमिक सत्यता पर विचार किया जाता है। इसे विगमन कहते हैं। उदाहरणार्थ मेरे हाथ में क़लम, दवात और पुस्तकें हैं। हाथ से छुटने पर यह सब पदार्थ पृथ्वी पर गिर जाते हैं। इसी प्रकार हम अन्य पदार्थों को देखते हैं, जब उन्हें सम्हालने वाली कोई शक्ति नहीं रहती, तब वह ज़मीन पर गिर जाते हैं। इसका क्या कारण है? क्या पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है? बार बार परीक्षा की, उपर्युक्त क्रम में कोई अन्तर उपस्थित न हुआ। इससे निश्चय हुआ कि पृथ्वी सब पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित करती है।

इस प्रकार सिद्धान्त स्थिर करने में हम यह मानकर चलते हैं कि सृष्टि-क्रम सर्वत्र एक समान है, उसके नियम स्थिर हैं, जिनमें परिवर्तन नहीं होता। जिन जिन कारणों से, किसी एक समय और एक स्थान में एक कार्य होता है, उन उन कारणों से अथवा वैसी ही स्थिति में पुनरपि वह कार्य होगा।

निगमन या अनुमानिक— निगमन से अभिप्राय एक सिद्धान्त को किसी घटना विशेष में घटाकर देखने से है। उदाहरणवत्, साधारण निरीक्षण से यह सिद्धान्त ठहरा हुआ है कि जिन (प्राणियों) का जन्म हुआ है, उनका मरण होता है। अब यदि "क" नामक प्राणी का जन्म हुआ है तो उसकी मृत्यु भी होगी। यह अनुमान करते समय हमें स्मरण रखना चाहिए कि यदि हमारा सिद्धान्त सर्वथा सत्य नहीं है तो हमारी तर्क शैली में त्रुटि हो जानी स्वाभाविक ही है। और, सिद्धान्त उसे ही कहना चाहिए जो सर्वत्र, सब समय, सब लोगों में एक समान घटित होता हो। उदाहरण-स्वरूप, किसी जाति या धर्म का कोई आदमी हमारा वस्त्रादि चुरा ले जाय, और हम यह कहने लगे कि इस जाति या धर्म के सब आदमी चोर हैं, तो यह भूल है। लेकिन, जब हम देखते हैं कि कच्चा संखिया खाने वालों में से प्रति सैकड़ा ९९ मर जाते हैं और कभी कभी सौ के सौ भी मर जाते हैं, तो हमारा यह सिद्धान्त स्थापित करना ठीक होगा कि साधारणतया संखिया खाने से मनुष्य मर जाते हैं।

दोनों विभागों की उपयोगिता—विदित हो कि तर्क-शास्त्र के उपर्युक्त दो भाग एक दूसरे के आश्रित एवं सहायक हैं। निगमन जिन सिद्धान्तों को लेकर कार्य क्षेत्र में उतरता है, वे विगमन द्वारा ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार विगमन को भी निगमन की आवश्यकता पड़ती है, क्यों कि जब हम किसी सिद्धान्त की सर्व-व्यापकता पर विचार करते हैं, तब हम बहुत सी घटनाओं के सम्बन्ध में एक एक करके यह अनुमान कर लेते हैं कि एक ही स्थिति में वे सब एक विशेष प्रकार से ही घटित होंगी। निदान सृष्टि-नियमों का अन्वेषण करने के लिये विगमन और निगमन दोनों ही आवश्यक एवं उपयोगी हैं।

तर्क-शास्त्र पर आक्षेप- कोई कोई कहा करते हैं कि तर्क एक भयंकर अस्त्र है, और मनुष्य (विशेषकर, कतिपय वकील लोग) तर्क द्वारा सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा प्रमाणित करने की चेष्टा किया करते हैं। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि तर्क शास्त्र का प्रचार होना अनुचित है। यों तो संसार के सभी अच्छे पदार्थों का दुरुपयोग किया जा सकता है प्राणियों को जीवित रखने वाले भोजन और जलवायु भी उनके अनिष्ट के कारण हो सकते हैं। परन्तु, केवल इसी लिये उनका महत्त्व कम समझना मूर्खता है।

कुछ व्यक्ति ऐसा भी आक्षेप किया करते हैं कि तर्क-शास्त्र की शिक्षा की कुछ आवश्यकता नहीं। इसके अध्ययन के बिना भी, कुछ मनुष्य शुद्ध तर्कना कर सकते हैं। यह कथन ऐसा ही है कि व्यायाम न करने वाले भी कुछ मनुष्य सुडौल, हृष्ट-पुष्ट पाये जाते हैं, इसलिये व्यायाम उपयोगी नहीं। सोचने की बात है कि जो सज्जन व्यायाम के बिना भी निरोग हैं, वे व्यायाम करने से क्या और अधिक स्वस्थ न होंगे। फिर, जो रोगी या निर्बल हैं, उन्हें समुचित व्यायाम से लाभ पहुंचने के विषय में तो किसी को सन्देह ही नहीं है। इसी प्रकार, तर्क-शास्त्र का अध्ययन सब के लिये लाभकारी है। इसके द्वारा मानसिक शक्ति का विकास होता है, बुद्धि बढ़ती है, एवं, दूसरे विज्ञानों को समझने की योग्यता प्राप्त होती है।

इसकी शिक्षा और साहित्य—तर्क शास्त्र आरम्भ करने से पहले विद्यार्थी को भाषा, गणित, भूगोल आदि का साधारण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। इस विषय की विशेष आवश्यकता भी उसी समय होती है, जब विद्यार्थी विविध विज्ञानों के गूढ़ सिद्धान्तों पर विचार करने लगता है। हां, यह अच्छा है कि तर्क-शास्त्र की बारीकियां और जटिल सूत्र सीखने से पहले विद्यार्थी समय समय पर शुद्ध तर्कना के उदाहरण समझे, जिससे प्रारम्भ से ही उसे

भ्रम-रहित तर्क करने का अभ्यास होजाय।

हमारे देश के प्राय अधिकांश विद्यार्थी किसी विज्ञान के गूढ़ तत्त्व और सिद्धान्तों की खोज में प्रवृत्त नहीं होते। इसी लिए वे इस शास्त्र की आवश्यकता भी नहीं समझते। प्रायः देखा जाता है कि इस विषय को वे ही विद्यार्थी अध्ययन करते हैं, जिन्हें भविष्य में वकालत करने की अभिलाषा हो, क्यों कि क़ानूनी वाद विवाद में इस विषय से काम लिया जाता है। कचहरियों का काम विशेषतया अंगरेज़ी में होने से प्रायः विद्यार्थी इस विषय को अंगरेज़ी में ही सीखते हैं। बस, हिन्दी भाषा में इस विषय की पुस्तकों की मांग कम होने के कारण, इसका साहित्य भी सन्तोष-जनक नहीं है। अब पाठकों का ध्यान वैज्ञानिक विषयों की ओर बढ़ता जा रहा है; कुछ अच्छी पुस्तकें प्रकाशित होगयी हैं। आशा है, भविष्य में लेखक तर्क शास्त्र सम्बन्धी साहित्य की पूर्ति में अधिक प्रयत्नशील होंगे।

(१०)

दस्तकारी

'दस्तकारी' का शब्दार्थ है, हाथ का काम। इससे अभिप्राय ऐसे काम से होता है, जिसमें मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों के साथ हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियों को भी काम करने का यथेष्ट अवसर मिले। उदाहरणवत् काष्ठकारी (बढ़ईगीरी), लुहारी, सुनारी, दर्ज़ीगिरी, कपड़ा बुनना, बर्तन बनाना, गृह निर्म्माण आदि कार्य दस्तकारी हैं।

दस्तकारी और शिक्षा—शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति करना है। परन्तु आज कल कुछ आदमी मानसिक शिक्षा को ही प्रधानता देते हैं; यहां तक कि शिक्षा कहने से साधारणतया भाषा, गणित आदि उन्हीं विषयों की शिक्षा की कल्पना होती है, जिनके सम्बन्ध में हमने पिछले पृष्ठों में विचार किया है। परन्तु, यह स्पष्ट है कि किसी मनुष्य के मस्तिष्क का चाहे जितना विकास होजाय, वह चाहे जितना ज्ञानवान और बुद्धिमान होजाय, जब तक उसकी सब ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की कार्य करने की शक्ति का समुचित विकास नहीं होता, उसकी उन्नति तथा शिक्षा अपूर्ण

है। आज कल जिन भिन्न भिन्न पाठ्य विषयों पर प्रायः ज़ोर दिया जाता है, उनसे विशेषतया मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। उनमें विद्यार्थी के हाथ, पाव, आंख, कान, आदि को काम करने का अवसर नहीं मिलता। इन अंगो का शिक्षण या 'ट्रेनिंग' नहीं होता। दस्तकारियो में विद्यार्थी के इन अंगो का समुचित उपयोग होता है, और इनकी कार्य-क्षमता बढ़ती है; विद्यार्थियों की जांचने नाप तोल करने, अथवा बिना नाप तोल किये ही किसी वस्तु के परिमाण आदि का बहुत कुछ ठीक अनुमान करने, तथा निरीक्षण करने आदि की कुशलता बढ़ती है। इससे स्पष्ट है कि दस्तकारी शिक्षा का एक आवश्यक भाग है।

व्यवहारिक जीवन में उपयोगिता—दस्तकारियों का ज्ञान व्यवहारिक जीवन में भी बहुत उपयोगी होता है। गृहस्थ मे काम आने वाली चीजे समय समय पर बिगड़ जाया करती है। कोरा साहित्यक व्यक्ति ऐसे अवसर पर नितान्त पर-मुखापेक्षी बना रहता है। उसकी चारपाई टूट जाय, तो उसे उसी पर पड़े रहना पड़ेगा या ज़मीन पर बिस्तरा बिछाना होगा, जब तक कि कोई कारीगर आकर उसे सुधार न दे। इसी प्रकार कुर्सी का पाया टूट जाने पर लेखक महाशय मेज का भी उपयोग करने से वंचित रहते हैं, अथवा, उस टूटी हुई कुर्सी से ही काम लेते हैं, जिससे

चित्त एकाग्र नहीं रहता, और तनिक सी असावधानी होने पर, लुढ़कने का निराला ही दृश्य उपस्थित होता है। जिन लोगों ने हाथ के काम की कुछ शिक्षा पा ली है, उन्हें ऐसी असुविधायें नहीं रहती।

औद्योगिक शिक्षा से एकता और ममता के भावों की वृद्धि—आज कल बहुत से व्यक्ति पढ़ लिख कर हाथ के काम से घृणा सी करने लगते हैं। वे शारीरिक श्रम को बहुत घटिया दर्जे का काम समझते हैं, और इसलिये अपने मज़दूरी-पेशा भाइयों को नीचे दर्जे का मानकर स्वयं उच्च श्रेणी के होने का अभिमान करते हैं। भारतवर्ष में जाति पाति के इस ऊंच नीच के विचार ने कैसा अनर्थ कर रखा है, यह किसी विचारशील से छिपा नहीं है। परन्तु, इसका सुधार भी तो कुछ व्याख्यानों या लेख द्वारा उपदेश करने मात्र से नहीं हो सकता। युवावस्था में, मन में अच्छे सस्कार डालनाही इसका उत्तम उपायहै। जो विद्यार्थी औद्योगिक शिक्षा पालेते हैं, जो लकड़ी, लोहे या चीनी मिट्टी आदि का सामान बनाने या कपड़ा बुनने या सीने आदि का काम कर चुकते हैं, उनके लिये यह स्वाभाविक ही होगा कि श्रम की महत्ता समझें, उसका आदर करें, और श्रमजीवी भाइयों को निम्न जाति या समाज का न समझकर, उनसे समानता का व्यवहार करें, उनसे प्रेम-पूर्वक रहें। इससे स्पष्ट है

कि दस्तकारियों की शिक्षा से देश में एकता और भ्रातृ-भाव की वृद्धि में बड़ी सहायता मिलती है।

स्वास्थ और आजीविका का प्रश्न—दस्तकारियों की शिक्षा पाये हुए विद्यार्थियों को स्वास्थ-रक्षा तथा आजीविका-प्राप्ति का प्रश्न ऐसा व्याकुल नहीं करता, जितना कोरी साहित्यिक शिक्षा पाने वालों को करता है। भारतवर्ष में यद्यपि साहित्यिक शिक्षा का प्रचार अभी बहुत कम है, फिर भी प्रति वर्ष हजारों विद्यार्थी 'मेट्रीक्यूलेशन' की परीक्षा में बैठते हैं। उत्तीर्ण विद्यार्थियों में से थोड़े से ही आगे कालिज की पढ़ायी करते हैं। शेष सब उत्तीर्ण विद्यार्थी, तथा बहुत से अनुत्तीर्ण विद्यार्थी भी आजीविका की चिन्ता में जहां तहां भटकते फिरते हैं। इनमें, कुछ इनसे कम और कुछ इससे अधिक मानसिक योग्यता वाले भी मिल जाते हैं। इस प्रकार आजीविका की खोज में फिरनेवालों की संख्या अच्छी ख़ासी हो जाती है। इनमें से बहुत सों को किसी औद्योगिक विषय की शिक्षा मिली हुई नहीं होती, साहित्यिक शिक्षा में इनका बहुत द्रव्य खर्च होजाने से इनके पास किसी व्यापार धन्धे के लिये कुछ पूंजी नहीं रहती, तथा, मस्तिष्क का बहुत अधिक कार्य करने से स्वास्थ भी अच्छा नहीं रहता। हाथ का काम करने का इन्हें न अभ्यास होता है, और न रुचि ही। इन विविध कारणों से जीवन-यात्रा

की समस्या इनके लिये बहुत कठिन होजाती है। ये पद पद पर ठोकर खाते हैं, और अन्ततः नौकरी का आसरा तकते हैं। नौकरियों की सख्या बहुत परिमित ही होती है। इसलिये एक साधारण बीस बीस, तीस तीस रुपये मासिक की जगह के लिये कभी कभी सैकड़ों प्रार्थना-पत्र आजाते हैं। जिस किसी को यह नौकरी मिल जाती है, वह अपने भाग्य को सराहता है और शेष सब बेकारों की संख्या की वृद्धि करते रहते हैं। फिर, नौकरी करने वालों को बहुधा अपने स्वतत्र विचार दबाकर खुशामदी, रिश्वती, और पराधीनता-मय जीवन बिताना होता है।

जो विद्यार्थी कोई दस्तकारी सीख लेते हैं, वे पीछे स्वावलम्बी होजाते हैं, उनका नैतिक आदर्श भी अच्छा बना रह सकता है, उन्हे किसी की अधीनता में रहना नहीं पड़ता। वे स्वाभिमान-पूर्वक अपना निर्वाह कर सकते हैं। हाथ पांव से काम करते रहने के कारण, उनका स्वास्थ भी प्रायः ऐसा रहता है, कि शिक्षित कहे जाने वाले शौकीन तथा नाजुक-मिजाज़ आदमी उनसे ईर्षा करें।

औद्योगिक शिक्षा संस्थाओं की आवश्यकता—भारतवर्ष में औद्योगिक शिक्षा को यथेष्ठ महत्त्व नहीं दिया जाता। यहां ऐसी शिक्षा देने वाली संस्थायें बहुत कम हैं। युवकों को किसी औद्योगिक विषय का कुछ साधारण बोध

प्राप्त करने में भी बड़ी कठिनाई होती है। उन्हें अपने विषय की विशेष जानकारी नहीं हो सकती। यही कारण है कि यहां भिन्न भिन्न उद्योग धन्धो की समुचित उन्नति नहीं हो पाती। बड़ी आवश्यकता है कि जो जो स्थान जिस दस्तकारी के लिये प्रसिद्ध हो, वहां उस औद्योगिक विषय की शिक्षा देने वाली अच्छी सस्था हो।

साथ ही प्रत्येक मिडल और हाईस्कूल में स्थानीय सुविधा और आवश्यकता के अनुसार एक दो दस्तकारियो की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे साहित्यिक शिक्षा के साथ नवयुवक दस्तकारी के भी कुछ अभ्यस्त होजाय। ऐसी वर्तमान सस्थाओं में वृन्दावन का प्रेम महा विद्यालय विशेष उल्लेखनीय है। यहां साहित्यिक एव शिल्प सम्बन्धी दोनों प्रकार की शिक्षा का मिश्रण है; साथ ही दोनो निश्शुल्क भी हैं।

साहित्यिक और औद्योगिक शिक्षा का सहयोग—विचार करके देखा जाय तो साहित्यिक और औद्योगिक शिक्षा एक दूसरे की सहायक हैं। दिन भर साहित्यिक शिक्षा पाने वाले के मस्तिष्क पर बडा भार पडता है, उसे आवश्यक विश्राम आदि नहीं मिलता। इसके विपरीत अकेली औद्योगिक शिक्षा पाने वाले के हाथ पांव को बहुत अधिक कार्य करना पड़ता है, उनके शारीरिक श्रम की अति होजाती है; मानसिक विकास को कुछ अवसर ही नहीं

मिलता। पूर्ण उन्नति के लिये मनुष्य को दोनों की ही आवश्यकता होती है। हमारा लक्ष्य यह होना चाहिये कि कोई कारीगर ऐसा अशिक्षित न रहे, कि उसे अपने निकट सम्बन्धी को पत्र लिखने या अपना हिसाब-किताब करने के लिये भी दूसरों का आश्रित होना पड़े। साथ ही हमारे लिखे-पढ़े, शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्ति भी दस्तकारियों से ऐसे शून्य न हों कि कहीं एक चोबा या कील गाडने के लिये भी कारीगर को ढूंढते फिरे। कारीगरों को, (साहित्यिक) शिक्षा का स्वागत करना चाहिये, और शिक्षितों को श्रम की महत्ता समझना चाहिये। इस प्रकार साहित्यिक और औद्योगिक शिक्षा का सहयोग होने से, देशोन्नति के कार्य में सहायता और सफलता मिलती है। शुभम्।

द्वितीय खंड

विचारणीय विषय

विषय प्रवेश

पाठ्य विषयों की भांति, हमारे विचारणीय विषयों की भी संख्या निश्चित करना कठिन है, और, यहां कुछ थोड़े से ही विषयों पर विचार किया जा सकता है। साधारणतया विद्यार्थियों के हृदय में अपनी मातृ-भाषा और मातृ-भूमि के लिये यथेष्ठ सेवा और भक्ति का भाव होना आवश्यक है। विद्यार्थी जीवन महान कार्यों की तैयारी का समय होता है। अत उन्हें चाहिये कि इस समय मे अच्छी आदतें डाले, आत्मोन्नति का ध्यान रखे, समय समय पर स्वय अपनी जांच करते रहा करे, और नियम-पालन के महत्व का स्मरण रखें। वे जीवन-संग्राम में धैर्य और दृढ़ता-पूर्वक अपना कर्तव्य पालन करते हुए, अपनी जीवन यात्रा को सुख शान्ति से तय करें, अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर रखे, और किसी भी दशा में अपना झडा नीचा न होने दे, अर्थात् अपने स्वाभिमान आदि उच्च भावो में न्यूनता न होने दें।

इन्ही विचारों को लिये हुए, कुछ उपयोगी विषयों पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डाला जायगा।

(१)

मातृ-भाषा के प्रेम

सन् १८७० ई० में फ्रांस और जर्मनी में घोर युद्ध हुआ। इसमें फ्रांसीसियों की विकट पराजय हुई। फ्रांस ने जर्मनी को हर्जाने के निमित्त एक बड़ी रकम देनी स्वीकार की, साथ ही, उसे अपने दो प्रान्त अलसेस और लौरेन जर्मनी के हवाले कर देने पड़े। तत्कालीन विविध प्रसंगों एवं घटनाओं का वर्णन पढ़ने और विचारने योग्य है। उनमें से आज हम एक शिक्षाप्रद घटना का उल्लेख करते हैं।

अलसेस प्रान्त निवासी एक फ्रांसीसी महाशय अपने उस समय (सन् १८७० ई०) के अनुभव को इस प्रकार लिखते हैं —"आज का पाठ मैं ने याद नहीं किया था। इस लिए डरता डरता पाठशाला पहुंचा। परन्तु, आज वहां की दशा कुछ और ही थी। सर्वत्र सन्नाटा देखकर मुझे बहुत भय हुआ। स्थान पर बैठते ही देखता हूं कि मास्टर साहब आज अन्य प्रकार के भेष में हैं। हमारी पाठशाला में शिक्षा पाये हुए, गांव के कई एक बड़े बूढ़े मनुष्य भी बैठे हैं। इतने में

हमारे मास्टर साहब गम्भीर स्वर से कहने लगे कि "बालका ! तुम्हें पढ़ाने का आज मेरा अन्तिम दिन है। बर्लिन (जर्मनी) सरकार ने ऐसी आज्ञा दी है कि अलसेस प्रान्त में अब जर्मन भाषा ही पढाई जाय, कोई दूसरी भाषा न पढ़ाई जाय। बस, आज से तुम्हारी मातृ-भाषा के पढ़ाने की इतिश्री होगई। जर्मन भाषा पढ़ाने वाला मास्टर कल से कार्य्यारम्भ करेगा। आज तो खूब ध्यान देकर पढ़लो, यही मेरा निवेदन है। इतना कहते ही मास्टर साहब का कंठ भर आया, कहने लगे कि 'हमारी फ्रेंच भाषा के समान सुन्दर तथा सर्वांग-पूर्ण भाषा त्रिभुवन में मिलना कठिन है। हाय ! तिस पर भी आज यह सदैव के लिए छूटती है। बिना फ्रेंच भाषा के हम फ्रांसीसी कैसे कहला सकते हैं'। इतना कहते ही मास्टर साहब शोक से व्याकुल होगये, और हम लोग भी सन्न रह गये। धैर्य धारण करके, मास्टर साहब फिर बोले कि 'इस दशा में भी हमें अपनी भाषा का त्याग नहीं करना चाहिये, उसी मे ही बोल चाल जारी रखनी चाहिये; क्योंकि देश किसी भी विपत्ति में क्यों न पड जाय, जब तक उसकी मातृ-भाषा बनी है, तब तक उसके कल्याण की बाग-डोर उसके हाथ में है; यह बात सबको हृदय पटल पर अङ्कित रखनी चाहिये।' इतना कह कर, शोक दशा में भी मास्टर साहब ने बडी गम्भीरता के साथ हम लोगो को पढ़ाना प्रारम्भ किया। परन्तु आज का पढ़ाना विलक्षण प्रकार का

था। पढ़ाने के पश्चात् लिखाना प्रारम्भ किया। आज उन्होंने बारम्बार यही लिखवाया "फ्रांस, अलसेस, फ्रांस अलसेस"। † हम लोग भी बड़ी भक्ति-पूर्वक लिख रहे थे। इतने में बारह बजे की गजर हुई, और जर्मन सिपाही परेट करते हुए हमारी पाठशाला के निकट से जाने लगे। बिगुल सुनते ही हमारे मास्टर साहब एकदम खड़े होगये, उनकी आकृति बदल गई, पर उनका स्वाभिमान वैसा ही बना रहा, भरे हुए स्वर से बोले "बालको, मित्रो, मैं अब ....."। इतना कहते ही गला भर आया। आगे वह कुछ न कह सके। थोड़ी देर पश्चात् कुछ सावधान होकर, उन्होंने खड़िया हाथ में ली, और बोर्ड पर मोटे अक्षरों में ये शब्द लिखे:—"हवीव ला फ्रांस" इनका अर्थ है कि "फ्रांस देश चिरायु हो।"

यह लिखने के पश्चात वे तनिक ठहर गये। भीत का सहारा लेकर हम लोगों की ओर देखते रहे। उनका गला भर आया, मुँह से शब्द नहीं निकलता था। इस कारण हाथ के ही सकेत से "हद होगई, जाइये" यह सूचित किया।

× × × ×

फ्रेंच ग्रन्थकार आलफ्रांस डांडे के कथनानुसार, अलसेस प्रान्त, जर्मन सरकार के आदेश से अपनी मातृ-भाषा खो

† यह लिखाना वैसा ही प्रेम-भक्ति-पूर्ण है, जैसा प्रह्लादजी का "राम राम" लिखना था

बैठा। वहां के जन-समूह ने इस बात का घोर आन्दोलन किया कि वहां फ्रेंच भाषा फिर से सिखाई जाय। पर उनके सब प्रयत्न निष्फल हुए, यह सब स्वाभाविक ही था, जब कि जर्मन सरकार का उद्देश यह हो कि इस प्रान्त से फ्रेंच भाषा का अस्तित्व लुप्त हो जाय, और अगली ही पीढ़ी जर्मन लोगों के समान, जर्मन भाषा ही जानने वाली हो। इधर फ्रांसीसियों ने भी यह निश्चय रक्खा कि जहां तक बने अपनी मातृ-भाषा से परिचित रहें, तथा यह दृढ़ आशा बनाये रक्खी कि कभी न कभी तो इसका पुनरुद्धार कर ही सकेंगे। इस प्रकार सन् १८७० से १९१२ ई. तक, ४२ वर्ष, फ्रेंच लोगों के प्रयत्नों को यश न मिला। परन्तु, 'जेहि का जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू॥' इस वाक्य की सत्यता को मेटने का, कौन दम भर सकता है! सहसा एक चमत्कारिक रीति से बलाढ्य जर्मन सरकार का निश्चय कैसे टला, यह नीचे लिखे मनोहर प्रसंग से विदित होगा।

× × ×

सन् १९१२ ई० की बात है। अलसेस प्रान्त के एक छोटे से ग्राम में धूमधाम से सजावट की गई। मार्ग सब सुशोभित करके स्थान स्थान पर 'स्वागत' शब्दाङ्कित महराबें लगाई गई थी। अधिकारी वर्ग रोशनी करने के कार्य्य में दत्तचित्त थे। क्यों न हो, आज स्वयं जर्मन सम्राट सपत्नीक दौरे पर निकले

हुए हैं, और अलसेस के इस गांव में पधारने का उनका यह प्रथम ही अवसर है। ऐसे स्मरणीय समय पर खूब तैयारियां करना, ग्रामवासियों के लिये, स्वाभाविक था।

निश्चित समय पर सम्राट् तथा सम्राज्ञी पधारे। रीत्यानुसार उनके स्वागत किये जाने के पश्चात्, महारानी साहिबा बालिकाओं की पाठशाला निरीक्षण करने के लिये निकलीं। कन्याओं ने भी सुस्वर गीत से उनका मन आह्लादित किया। महारानी साहिबा ने विविध श्रेणियों की बालिकाओं से कई एक प्रश्न किये। उनमें एक सात, आठ वर्ष की तीक्ष्ण बुद्धि बालिका भी थी। उसने महारानी साहिबा के प्रश्नों का उत्तर ऐसी रीति से दिया कि वे प्रसन्न हो गईं, और उसकी पीठ ठोक कर बोलीं "ऐ बालिका! मैं आज तुझ से अत्यन्त प्रसन्न हुई हूँ। तू जो चाहे सो मांग, तेरी इच्छा पूरी की जायगी। वह बालिका मधुर हास्य करती हुई बोली "सरकार, आपकी जो ऐसी ही कृपा है, तो मेरी इतनी ही आकांक्षा पूरी करो कि हमको फिर फ्रेंच भाषा पढ़ाई जाने का हुक्म मिले।" यह सुनते ही महारानी साहिबा चकित होगईं। परन्तु दिये हुए वचन का पालन न करना कितना अनुचित होगा, इसका तत्क्षण विचार करके सम्राज्ञी बोली, "पुत्री, ठीक है, तेरी इच्छा पूर्ण होगी।"

पार्वती जी का दिया हुआ वचन महादेव जी ने कब व्यर्थ

जाने दिया है। जर्मन राज-कर्मचारियों की नीति एक तरफ ताक पर रख दी गई, और अलसेस के स्कूलों में कुछ घंटे फ्रेंच भाषा पढ़ाई जाय, यह आज्ञा राजधानी से शीघ्र भेज दी गई। परम पिता ने इस अकल्पित घटना द्वारा अलसेस वासियों का मनोरथ पूर्ण किया।*

× × ×

सन् १९१४ ई० तक योरपीय महायुद्ध हुआ। उसके परिणाम-स्वरूप जो संधि हुई, उससे अन्यान्य बातों में अलसेस और लारेन पुनः फ्रांस को मिल गये। इस प्रकार, इन स्थानों के निवासियों ने अपनी मातृ-भाषा के प्रति जो अटूट प्रेम बनाये रखा था, उसका उन्हें पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ। ये अपने स्वदेश बन्धुओं से मिल गये। मातृ-भाषा का मातृ-भूमि से कैसा प्रगाढ़ सम्बन्ध है!

* यह लेख मराठी मनोरंजन के आधार पर लिखा गया था, और इनके लिखने में हमें अपने मित्र श्री० मोहनलाल माथुर से सहायता मिली थी।

(२)

हमारी मातृ-भूमि

हम एक बार राजपूताने में एक सार्वजनिक (ग़ैर-सरकारी) विद्यालय देखने गए। एक श्रेणी भूगोल पढ़ रही थी, अध्यापक महाशय ने हमसे कहा कि विद्यार्थियों से कुछ पूछिए। हमने प्रश्न किया, लड़को ! अपनी मातृ-भूमि का नाम बताओ ! एक ने जवाब दिया "मेरी मातृ-भूमि जयपुर है।" दूसरे ने कहा, "मारवाड़।" इन उत्तरों से हमें सन्तुष्ट न पाकर, अन्य विद्यार्थियों ने, जो जवाब देने के लिए तैयार थे, अपने हाथ नीचे कर लिए। वे सोचने लगे कि अब क्या जवाब दें ! हमने देखा कि, उस श्रेणी में कुछ मुसलमान विद्यार्थी हैं। हमें उनका भी विचार जानने की इच्छा हुई। इससे हमने उनमें से सब से बड़े से अपना प्रश्न किया। उस विद्यार्थी ने धीमे स्वर से कहा, मैं मातृ-भूमि का मतलब नहीं समझा। हमने कहा, तुम्हारा 'वतन' या मुल्क कौन सा है। इस पर तो उस नवयुवक ने झट जवाब दे दिया "हमारा वतन मक्का है।"

विचारवान पाठक इस स्थिति पर तनिक गम्भीरता से

विचार करें। हमारे अनेक हिन्दू विद्यार्थी भारतवर्ष के किसी नगर या प्रान्त विशेष को अपनी मातृ-भूमि कहते हैं और मुसलमान तो अपना 'वतन' भारतवर्ष से बाहर ग़ैर देशा को ही मानते हैं।

परन्तु बात केवल विद्यार्थियों की ही नहीं है। बहुधा अन्य व्यक्ति भी, रेल आदि में यात्रा करते हुए, ऐसा ही भ्रमात्मक प्रश्नोत्तर करते सुने जाते हैं। एक पूछता है कि, तुम्हारा देश कौनसा है? दूसरा जवाब देता है, हमारा देश बंगाल (या पंजाब आदि) है, अथवा हम हिन्दुस्थानी हैं। इस बोल चाल में हिन्दुस्थानी से अभिप्राय अधिकांश में संयुक्त प्रान्तीय से होता है, और बगाल पंजाब आदि को देश समझ लिया जाता है।

हम में से प्रत्येक को स्मरण रखना चाहिए कि 'मैं भारतीय हू, मेरी मातृ-भूमि, मेरी जन्म-भूमि, मेरा प्यारा देश भारतवर्ष है।' बंगाल, पंजाब, राजपूताना आदि देश नहीं हैं, ये प्रान्त मात्र हैं, और भारतवर्ष के अङ्ग हैं, इन प्रान्तों के रहन-सहन या भाषा भाव आदि के अन्तर से (जो क्रमशः कम होता जा रहा है), हमारे भारतीय होने में कोई अन्तर नहीं आता। अपने ग्राम या नगर को ही मातृ-भूमि समझना बड़ी अनुदारता या ना समझी है। हमें अपने विचार क्षेत्र को विस्तृत करना चाहिए और प्रान्तीयता

में ही परिमित न रहकर स्वदेश का भी हित-चिन्तन करना चाहिये।

'मै भारतीय हू' यह बात कहने में ज़रासी मालूम होती है, परन्तु यह हमारी राष्ट्रीय भावनाओं का मूल मंत्र है। इस सूक्ष्म परन्तु महत्व-पूर्ण बात के भूल जाने से ही हमारी यह अधोगति हुई है। भारतीय इतिहास इस विषय सम्बन्धी चिन्तनीय उदाहरणों से भरा पड़ा है। पिछली शताब्दियों में हमने अपने जन्म-स्थान के आस पास की थोड़ी सी भूमि को ही 'मातृ-भूमि' समझा। इसीलिये, मातृ-भूमि के लिये सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना रखते हुए भी, हमने अपने पड़ौसी नगर या प्रान्त की सुधि नहीं ली, और उस पर यहां तक आक्रमण होने दिये कि अन्तत वह पराधीन होगया; अथवा, स्वयं हमने ही उसे त्रस्त करके जर्जर कर दिया। यह सब केवल इसलिये कि उसको हमने अपनी मातृ-भूमि का अंग न समझकर उससे बाहर का भाग समझा, हमारा मातृ-भूमि का क्षेत्र उस समय अत्यन्त संकुचित या परिमित था, हमें उसके विस्तार का यथेष्ट ज्ञान न था।

अस्तु, अबतो ऐसा न होना चाहिये। हिन्दू हों या मुसलमान, सिक्ख हों या बौद्ध, ईसाई हों या पारसी, सबको अपनी मातृ-भूमि के व्यापक स्वरूप को समझ लेना चाहिये।

हमें अपने हृदय में भली भांति यह धारण कर लेना चाहिये कि भारतभूमि हमारी जन्म-भूमि है। इसी में हमारा जन्म हुआ, यही हमें खाने पहनने को देती है, यही की भाषा बोलकर हम अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यहीं के आचार विचार, रीति नीति, नियम, कानून क़ायदे आदि जानकर हम अपना अधिकांश व्यवहार चलाते हैं। अन्ततः हमारी जीवन लीला पूरी होने पर इसी देश की मिट्टी हमारे भौतिक शरीर को आश्रय प्रदान करती है। बस, भारतमाता हमारी आराध्या देवी है। हम सब उसकी सन्तान हैं, परस्पर भाई बन्धु है। हम सबको प्रेम-पूर्वक रहना चाहिये।

हमारी मातृ भूमि होने के कारण तो भारतवर्ष हमारी पुज्य भूमि है ही, इसके अतिरिक्त यह ससार में ऐसा देश भी है, जिसने समय समय पर विविध जातियों, धर्मों और सभ्यताओं का स्वागत किया है, जिसकी आचार विचार प्रणाली सबके सुख और शान्ति की रक्षक और पोषक है। हमारा यह सौभाग्य है कि हमने इस सर्व श्रेष्ठ माता की गोद में जन्म लिया है। आओ, इसकी सुयोग्य संतान बनें, और ससार में इसका सुयश फैलावे।

(३)

हमारी आदतें

पाठक ! आप किसी १५, १६ वर्ष की आयु के, अफ़ीम या तम्बाकू सेवन करने वाले युवक से पूछिये कि भाई, तुम ऐसा क्यों करते हो, इससे क्या लाभ है। निश्चय ही वह यह कहेगा कि 'लाभ इसमें क्या होना आदत पड़ गई।' आप उसे इन पदार्थों की हानि बताइए और उससे इन्हें छोड़ देने के लिए आग्रह कीजिए। सम्भव है कि यदि उसके ध्यान में आजाय तो वह इनके उपयोग को छोड़ने का प्रयत्न करे, और कुछ काल पश्चात् बिलकुल छोड़ भी दे। अब, यदि आप किसी पच्चीस, तीस वर्ष की आयु वाले से ऐसा आग्रह करेंगे तो आप देखेंगे कि अच्छी तरह यह समझ जाने पर भी कि अफ़ीम या तम्बाकू से उसके शरीर को बहुत हानि पहुँच रही है, वह एक दम इस आदत को छोड़ देने में असमर्थ है। उसको बड़ा जोर लगाना पड़ता है। वह लगातार इसका प्रयत्न करते रहने पर भी, शायद ही कई महीनों में जाकर छुटकारा पावे।

परन्तु, यदि आप उपर्युक्त प्रकार की बातें, किसी वृद्ध महाशय

से कहेंगे तो इसमें सन्देह ही क्या कि आप उपहास के पात्र बनेंगे, क्यों कि सभी यह जानते हैं कि जिसने तमाम आयु भर एक पदार्थ विशेष कर उपयोग किया है, उसके लिए अब बुढ़ापे में उसे छोड़ना नितान्त कठिन ही नहीं, असम्भव है।

पाठकगण ! यह क्या ! आइए तनिक विचार तो करें, ये बुरी आदतें, ये बन्धन, जिनसे हम छुटकारा नहीं पा सकते, किसने लगा दिये। हम इनमें कैसे जकड़े गये ? क्या कोई फरिश्ता यह षड्यन्त्र रच गया ? अथवा क्या कभी ऐसी बात पर भी विश्वास हो सकता है कि ये कांटे कभी हमने ही बोये थे, और, अब बढ़कर इतने बड़े होगये कि हम इनको काट फैंकने में असमर्थ हैं। प्रारम्भ में किसी आदत को डालना या न डालना हमारे ही अधीन होता है; परन्तु अभ्यास पड़ जाने पर उसका छुटना अत्यन्त कठिन होजाता है। हमारी इच्छा हो, या न हो, उसका फल हमें भुगतना ही पड़ता है।

एक विद्वान् ने इस विषय को, सरल करने के हेतु, कथा के प्रसङ्ग से इस तरह समझाया है:—किसी मनुष्य ने एक सिंह के बच्चे को पालना आरम्भ किया। वह क्रमशः बलवान होता गया। मालिक ने कुछ ध्यान न दिया। सदैव उसे स्वेच्छानुसार रहने दिया। होते होते एक दिन शेर ने

भयानक रूप धारण किया। मालिक बहुतेरा ज़ोर लगा कर बैठ रहा, शेर किसी भांति वश में न आया। अन्त में मालिक को उसका शिकार होना ही पड़ा। पाठको! इसे कोरी कहानी न समझो। इसकी लाभदायक शिक्षा को अपने हृदय में स्थान दो।

अच्छा हो या बुरा, हमारे छोटे से छोटे काम का भी हमारी आत्मा पर विशेष प्रकार का प्रभाव पड़ता है। दूसरी बार ऐसा काम करना ज़्यादा आसान और मन पर ज़्यादा पुष्ट प्रभाव डालने वाला होता है। बार बार करने से काम आप ही आप होने लगता है, या यह कहिये कि हमें वह करना ही पड़ता है। बस, इसे ही हम 'आदत पड़ गयी' कहते हैं। जो बालक आज कलम चुराने का साहस करता है, क्या आश्चर्य यदि वह न रोका जावे तो कुछ दिन पीछे एक किताब भी ले भागने की धृष्टता करे, और धीरे धीरे पक्का चोर बन जाय। इससे यह न समझिये कि उपर्युक्त सिद्धान्त बुरी आदतों के ही विषय में घटता है। नहीं, नहीं; हमारी अच्छी आदतें भी इसी प्रकार बनती जाती हैं। जो बालक नित्य-प्रति दोनों समय सन्ध्या-हवन करता है, वह बड़ा होकर इस कार्य मे भी चूक नहीं सकता।

मनुष्य अपने मन को कितना ही समझाले कि क्या हुआ, बुरा काम एक बार करने से कुछ नहीं बिगड़ता,

एक अपराध तो क्षमा हो ही जाया करता है, फिर मैं तो ऐसा छुप कर करूंगा कि कोई देख ही न पावेगा। हम चाहे जैसे अपने मन को बहकाले, किये हुए कार्य का प्रभाव हमारे मन पर अवश्य पड़ेगा। हम चाहे जितने एकान्त स्थान और अँधेरी कोठरी मे चले जावें, सर्व-व्यापी परमात्मा से हम छुप नहीं सकते। फिर हमारी आत्मा तो हरदम हमारे साथ विद्यमान है। हमारे जीवन-पृष्ठ पर तो वह कार्य अंकित हुए बिना रह ही नहीं सकता।

इसी प्रकार, हमारे एक एक काम से, हमारे आचरण रूपी महल की एक एक ईंट रक्खी जाती है। जब मकान बन कर पूरा तैयार हो जाता है, तब हम आश्चर्य करने बैठते हैं कि यह कौन बना गया। बस, हमारा स्वभाव, हमारा आचरण, आदतों का समूह, खोटा-खरा जैसा भी है, हमारा ही बनाया हुआ है। इसके कर्ता धर्ता सब प्रकार से हम ही हैं। अत. हमें चाहिये कि ऐसे ही कार्य किया करें, जिन से अच्छी आदतें बने, जो हमारे लिये कल्याणकारी हों।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यदि सयोग से हमारी कोई बुरी आदत पड़ गयी है, तो यह बात नहीं है कि वह छूट ही न सके। युवावस्था मे तो हमारा चरित्र बनाना बहुत कुछ हमारे ही अधीन है। कुम्हार को मिट्टी के बर्तन बनाते हुए बहुतों ने देखा होगा। जब तक मिट्टी कच्ची

और गीली रहती है, वह उसके वर्तन में मन-चाहा सुधार कर सकता है। इसी प्रकार, हमें यह सोचते रहना चाहिये कि हम कहीं कुमार्ग मे तो नहीं जा रहे हैं, यदि ऐसा मालूम हो, तो तुरन्त हमें अपनी दिशा बदलने का प्रयत्न करना चाहिये। हमारे प्रयत्न में दृढ़ता और धैर्य होना चाहिये। हमें पूर्ण निश्चय कर लेना चाहिये कि हम अपनी बुरी आदत को छोड़ेंगे। यदि वह आदत एक बार प्रयत्न करने पर न छूटे, तो फिर कोशिश करनी चाहिये। अपने मन में हमें कभी निराश न होना चाहिये। हमें उन महा-पुरुषों के जीवन-चरित्र तथा विचार पढ़ने और मनन करने चाहिये, जिन्होंने अनेक कठिनाइयों का दृढता-पूर्वक सामना किया है, और अन्त मे विजय पायी है। परमात्मा हमें भी विजयी करेगा, इसका हम यथेष्ट विश्वास रखें। ऐसे विचार रखने से, धीरे धीरे, हमारी बुरी आदतें सुधरेंगी, तथा अच्छी आदतें बनेंगी। शुभम्।

---

(४)

आत्मोन्नति

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कई एक कमरों के मिलने से महल बनता है, और, महल की सर्वाङ्ग-सुन्दरता अन्ततः उन ईंटों पर निर्भर होती है, जिनसे उसके कमरे बने होते हैं। इसी प्रकार कतिपय भिन्न भिन्न जातियों के समुदाय से देश बनता है, और देश (या राष्ट्र) की उन्नति अन्ततः उन व्यक्तियों पर अवलम्बित होती है, जिनके सङ्गठन से उसकी जातियों का निर्म्माण हुआ है । बस, आत्मोन्नति देशोन्नति की पहिली सीढ़ी है। जितनी अधिक आत्मोन्नति किसी व्यक्ति ने की है, उतनी ही अधिक देशोन्नति वह कर चुकता है।

पूज्यपाद श्री स्वामी रामतीर्थ जी का कथन है कि "जो लोग अपना ऋण अपने आप को पूरी तरह से अदा करते हैं, उनके तीनों ऋण (१-परमेश्वर की तरफ़, २-मनुष्य मात्र की तरफ़, ३-देश भूमि की तरफ) खुद-ब-खुद अदा हो जाते हैं। जो ऐसा करते हुए, अपना ऋण अपने आपको

चुकाते हुए, अपने तई रूहानी या अक्ली बचपन की हालत से आगे बढ़ाते हैं—मसलन् कुछ नहीं तो एम० ए० या शास्त्री की सी लियाक़त पैदा करली—वे जिस हद तक रूहानी या अक्ली जोर पैदा कर चुके हैं, उसी अन्दाज से कौम की गाड़ी को तरक्की की सड़क पर आगे खींच सकते हैं।"

पाठको! इन शब्दों पर अच्छी तरह ध्यान दो, इनमें कितना सदुपदेश भरा है। स्वामी जी अपने कथन की पुष्टि में क्या ही सरल दृष्टान्त उपस्थित करते हैं। "जो शख्स, मैदान में खड़ा होकर, निगाह फैलाता है, वह थोड़ी दूर तक देख सकता है, और चढ़ ही आदमियों को अपनी आवाज़ पहुचा सकता है। लेकिन ऊचे पर, या पहाड की चोटी पर, चढ़ कर चारों तरफ़ बहुत दूर आवाज़ सुना सकता है।"

इसी प्रकार, एक दूसरे तत्त्वदर्शी का विचार है कि कोई शख्स जितना अपने मन को सीधे मार्ग पर लाने में फलीभूत होता है उतना ही वह औरों को भी कल्याणदायक अवस्था की ओर ले जाता है। इसके साथ यह भी सदैव सत्य है कि जिस व्यक्ति ने स्वय आत्मोन्नति नहीं की है, जो उलटे मार्ग पर चल रहा है, उससे दूसरों का कल्याण नहीं हो सकता। स्वय नेत्रहीन दूसरे अन्धे को क्या मार्ग बताएगा!

कल्पना करो, एक अनाचारी उपदेशक जी स्वार्थ से प्रेरित होकर, सदाचार पर व्याख्यान दे रहे है । वे अपनी मधुर ध्वनि से श्रोताओं के कानों के पर्दे कम्पायमान कर रहे हैं। क्या कोई विचारशील यह कहने का साहस कर सकता है कि ऐसे उपदेश से श्रोताओं को कुछ आध्यात्मिक सुख या शान्ति मिलेगी ? कदापि नहीं। बहुतेरे श्रोता तो सभा-मडप में ही उपदेशक की ओर उँगली उठाने लगते हैं, 'वैद्यजी ! पहले अपना तो इलाज करलो' । शेष श्रोता भी प्राय चलते समय उपदेश का बृहदंश वहीं झाड जायगे, और, कोई बिरला ही उसे धारण कर सकता है ।*

अब दृश्य का दूसरा पहलू भी देखिये । एक सदाचारी संत महात्मा किसी नगर में पधारते हैं। नागरिकों से विशेष वार्तालाप नहीं करते। तथापि इनके दर्शन करनेवालों पर इनकी आकृति इनकी चाल-ढाल का विचित्र प्रभाव पड़ता है। जो एक दो शब्द ये महात्मा उच्चारण करते हैं, उनमें बिजली का सा सुधारक असर भरा होता है। कोई पापात्मा भी उनके सम्मुख कुविचार मन मे नहीं ला सकता । लाये कैसे। इनकी आत्मा से वे तीव्र किरणे निकलती हैं, जो

* इस से यह न समझना चाहिये कि उपदेशकीय कार्य निंद्य है, इसका तात्पर्य केवल इतना है कि उपदेशक सदाचारी और अनुभवी होना चाहिये, अन्यथा अभीष्ट सिद्ध न होगा।

आगन्तुकों के क्षुद्र विचारों को एक दम फूक उड़ाती हैं। कहावत प्रसिद्ध है—

पारस का अरु सन्त का, बड़ा आतरा जान।
वह लोहा कञ्चन करे, यह करले आप समान॥

धन्य हैं ऐसे सन्त महात्मा। और धन्य है वह भूमि, जो इनके चरण से पवित्र है।

संसार में उपदेश की अपेक्षा आचरण का प्रभाव अधिक होता है। मनुष्य केवल यही नहीं चाहते कि उन्हे कोई बतला दे कि कौन कौन कार्य करना है, वरन् यह भी चाहा करते हैं कि वे कार्य कर दिखाये जांय। अतएव जब तक कोई व्यक्ति किसी कार्य को स्वयं करके नही दिखाता तब तक उसकी प्रेरणा प्रायः निष्फल होती है। आशा है कि सुविज्ञ पाठक इससे यह तत्त्व भली भाति समझ गये होंगे कि जिस व्यक्ति ने स्वय आत्मोन्नति नहीं की है वह अपने देश-बन्धुओं की उन्नति (जिस पर देशोन्नति अवलम्बित है) कदापि नही कर सकेगा। अतः जो चाहते है कि देश उन्नत हो, वे प्रथमतः आत्मोन्नति करें।

(५)

नियम पालन

हमारे आज कल के विद्यार्थी ही भारतवर्ष के भावी नागरिक हैं। स्वदेश की उन्नति का भार शीघ्र ही उनके कन्धे पर होगा। अतः उन्हें इसके लिये समुचित रूप से तैयार होना चाहिये। नागरिकता का उत्तरदायित्व संभालना कोई साधारण बात नहीं। स्वच्छन्द और उच्छृखल जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति सुयोग्य नागरिक नहीं बन सकते। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भावी नागरिक आरम्भ से ही, संयमी, और नियम-बद्ध जीवन की महिमा समझे।

इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र नियमित व्यवस्था है, नियम-पूर्वक शासन है। सूर्य चन्द्र तारागण आदि के अतिरिक्त हमारी पृथ्वी भी निर्धारित नियमों के अनुसार गति कर रही है। अग्नि जल वायु आदि भी विविध नियमों का पालन कर रहे हैं। और, इन सब पदार्थों का एक दूसरे से घनिष्ट सम्बन्ध है। ऐसी स्थिति में किसी के कुछ विचलित होने या नियम भंग करने से न केवल उसका ही, वरन उसके सहयोगियों का भी बहुत अनिष्ट होने की सम्भावना है।

विद्यार्थियों को नियम पालन करने की आवश्यकता, विविध दृष्टियों से है। पहले स्वयं उनकी ही दृष्टि से विचार किया जाता है। इस विषय में कोई मत भेद नहीं है कि प्रत्येक विद्यार्थी को स्वस्थ रहना चाहिये, परन्तु स्वास्थ सम्बन्धी विविध नियमों को पालन किये बिना कोई व्यक्ति स्वस्थ कैसे रह सकता है ! जो विद्यार्थी फ़ैशन, आराम-तलबी, बुरी आदत, या आत्मिक निर्बलता के कारण अनियमित जीवन व्यतीत करता है, व्यायाम नहीं करता, सात्त्विक भोजन न कर, चटपटे मसालेदार या मादक और उत्तेजक पदार्थों का सेवन करता है, ख़राब हवा में रहता है, बुरी संगति में समय व्यतीत करता है — उसे प्रकृति का दण्ड भुगतना होगा, किसी गुप्त या प्रकट, छोटी या बड़ी बीमारी का शिकार बनना पड़ेगा। बहुत से विद्यार्थी दूसरों को पान, बीड़ी, भाग या सिगरेट आदि का सेवन करते देखते हैं, तो स्वय भी उनका अनुकरण करने लग जाते हैं। दूषित वातावरण में रहने वालो के लिए यह स्वाभाविक ही है कि वे दुर्गुणों को ग्रहण करे, और अपने स्वास्थ तथा चरित्र को क्षति पहुंचायें। इसलिए हमें दूसरों की, चाहे वे हमारे मित्र या साथी ही क्यों न हो, अप्रसन्नता सहकर भी दूषित वातावरण से बचना और सदैव नियम-पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहना चाहिये। यह न विचारना चाहिये कि

एक दिन या एक बार नियम भंग करने से कुछ हर्ज न होगा। हमें खूब अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि इस एक दिन या एक बार की छोटी दीखने वाली बात में ही हमारे आत्म-बल की परीक्षा हो जायगी, और, यदि हम इसमें उत्तीर्ण न हुए तो हमारा जीवन भ्रष्ट होने का मार्ग प्रशस्त हो जायगा।

अपने ही लिये नहीं, समाज के हित की दृष्टि से भी विद्यार्थियों को नियम पालन करने का अभ्यास रखना चाहिये; क्योंकि बहुधा एक व्यक्ति के कार्य का केवल उसी से सम्बन्ध नहीं रहता, वरन् कई एक दूसरे व्यक्तियों पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ कभी कभी ऐसा देखने में आता है कि एक व्यक्ति की तनिक सी ला-परवाही या देरी करने से बहुत आदमियों का काम बिगड़ जाता है। इस लिए घर में हमें, घर सम्बन्धी नियम पालन करने चाहियें। स्कूल में स्कूल सम्बन्धी नियमों का पालन किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार जिस जिस संस्था या समिति आदिसे हमारा सम्बन्ध हो, उसके नियमों को ध्यान में रखना और उनका यथा-शक्ति पालन करना हमारा कर्त्तव्य है; इसकी अवहेलना अनुचित है। सम्भव है, कुछ नियम हमें कठोर तथा अरुचिकर या असुविधा-जनक प्रतीत हों, परन्तु जब कि उनसे समाज का कल्याण होता है,

और, वे हमारी आत्मा के विरुद्ध भी नहीं है, तो हमें उनका आदर करना ही चाहिये।

इसी प्रकार राज्य के हितार्थ भी विद्यार्थियों द्वारा नियम-पालन होना आवश्यक है। हम जिस ग्राम (या नगर), ज़िले अथवा प्रान्त में रहते हैं, वहां के प्रचलित नियमों का हमें समुचित आदर करना चाहिये। एक आदमी के उच्छृंखल जीवन व्यतीत करने से वहां के अन्य निवासियों पर बुरा प्रभाव पड़ता है, इस लिए हमें सदैव ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे द्वारा कोई ऐसा कार्य न हो, जिससे नागरिक जीवन को हानि पहुँचे। हमें सब कार्यों को नियमानुसार करते रहना चाहिये।

नियम पालन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिन पर छोटी अवस्था वाले विद्यार्थी समुचित रूप से विचार नहीं कर सकते। उन पर, बड़ी उम्र वाले ही यथेष्ट विचार कर सकते हैं।* यहां हमें केवल यही कहना है कि विद्यार्थियों को आरम्भ से ही नियम पालन की ओर यथेष्ट ध्यान देना चाहिये। नवयुवक साहसी और स्वाधीनता-प्रेमी हों, इसमें मातृ-भूमि का सौभाग्य है, परन्तु उच्छृंखलता या स्वच्छन्दता सर्वथा त्याज्य है। जो विद्यार्थी नियम और

* इनका हमारे 'नागरिक शास्त्र' में विचार किया गया है।

अनुशासन की अवहेलना करके मनमाना व्यवहार करते हैं, वे देश और जाति को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। अस्तु, विद्यार्थियों को चाहिये कि साहस और स्वाधीनता का वास्तविक अर्थ समझें, इनकी मर्यादा का ध्यान रखें। सच्ची स्वाधीनता नियम भंग करने, या उद्दंडता का जीवन बिताने में नहीं, वह तो यथेष्ट नियम पालन में ही है।

---

(६)

अपनी जांच करो

प्रायः हम दूसरों के दोष खोजने में बहुत कुशल होते हैं, परन्तु अपनी बुराइयों की ओर ध्यान नहीं दिया करते। दूसरों को अपराधी ठहराना, उन्हें दंड देना, या सुधारने का दम भरना सहल है, परन्तु स्वयं अपनी जांच करना कठिन है। जो दीपक चहु ओर प्रकाश फैलाता है, वह अपने नीचे सदैव बने रहने वाले अन्धकार को दूर करने में असमर्थ होता है। हमारे जिन नेत्रों ने दुनिया भर के पदार्थों की छान बीन कर

डाली, वे बिना दर्पण अपने तईं कब देख पाये हैं। सिकन्दर और लुटेरे का निम्न लिखित सम्वाद * इस विषय का अच्छा दृष्टान्त है —

सिकन्दर—क्या तू ही थ्रेसिया निवासी लुटेरा है, जिसकी बाबत मैं ने इतनी चर्चा सुनी है ?

लुटेरा—थ्रेसिया निवासी, और सिपाही मैं ही हूं।

सिकन्दर—तुझे सिपाही कौन कहे ! चोर, डाकू, लुटेरे ! देश में अशान्ति फैलाने वाले ! चाहे तेरा साहस प्रशसनीय हो, तेरे पाप-कर्मों को, भविष्य में, रोकने के लिए तुझे सजा दी जानी जरूरी है।

लु०—मैंने शिकायत का कौनसा काम किया है ?

सि०—क्या तू ने मेरी आज्ञाओं का उल्लघन नहीं किया ? जन साधारण की शान्ति भग नहीं की ? और, अपना जीवन अपने भाई बन्धुओं की जान माल को हानि पहुँचाने मे व्यतीत नहीं किया ?

लु०—ऐ सिकन्दर ! मै तेरा क़ैदी हू। जो कुछ तू कहे, मुझे सुनना होगा, और, जो दड तू दे, मुझे स्वीकार करना पड़ेगा। परन्तु, सुन, मेरी आत्मा स्वतन्त्र है। यदि मैं तेरे अपशब्दों का प्रत्युत्तर दू तो मैं स्वाधीनता-पूर्वक दूंगा।

* 'Evenings at Home' से।

सि०—बेखटके बोल ! दूसरों से वार्तालाप करते समय मेरी यह इच्छा कदापि नहीं होती कि उनका मुँह बन्द करने के लिए, मैं अपनी शक्ति का अनुचित लाभ उठाऊ।

लु०—तो मै तेरे उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर एक दूसरे प्रश्न द्वारा ही देता हू। बतला, तू ने अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत किया है ?

सि०—सूरमा की तरह । जहां चाहे पूछ ले, तुझे विदित होजायगा । वीरों में सब से वीर, विजेताओं में मै सब से बढ़कर, ओर, सम्राटों मे मैं सब से बलवान रहा हू।

लु०—तो, ख्याति क्या मेरी नहीं हुई है ? क्या कोई सरदार मुझसे बहादुर हुआ है — जिसके अनुयायी मेरे अनुयायियों से अधिक बलवान हुए हो ? कोई सरदार ऐसा हुआ हो तो बतादे। अपने विषय में मैं अधिक कहना नहीं चाहता। आत्म-श्लाघा से मुझे घृणा है। तू स्वय जानता है कि मै पकड़ में अनायास ही नहीं आ पाया हू।

सि०—क्या हुआ ! तू लुटेरा ही तो रहा, नीच, बेईमान लुटेरे के अतिरिक्त, तेरी गणना और किस में होगी ?

लु०—तनिक यह तो विचार कर कि विजैता के और लक्षण ही क्या होते हैं। क्या तू शान्ति और उद्योग के फलों को नष्ट नहीं करता रहा है ? न्याय तथा नियम बिना ही लूट मार नहीं करता रहा है ? तथा, इस भूमि पर चुड़ैल की भांति नहीं रहा है ? और, यह सब कुछ केवल इस लिए कि तेरी कभी न बुझने वाली राज-तृष्णा की कुछ तृप्ति हो। सौ एक साथियों को लेकर जो दशा मैं ने किसी शहर की की है, वही हालत लाखों आदमियों को लेकर तू ने राष्ट्रों की कर डाली। यदि मैं ने किसी हिरते-फिरते व्यक्ति के कपड़े उतार लिये तो तू ने राजाओं और राजकुमारों की दुर्दशा की है। यदि मैं ने चन्द एक झोपड़ी जलाई तो तू ने बहुत बड़े बड़े राज्यों और नगरों को मटियामेट कर डाला। सोच, अब फरक ही क्या रहा ! तू राजा था, और मैं मामूली आदमी ! इसी लिये तू मुझ से अधिक बलवान लुटेरा है।

सि०—यदि मैं ने राजाओं की सी छीना झपटी मचाई है, तो राजाओं का सा दान भी तो दिया है। यदि मैं ने राज्यों को उलट पुलट किया तो उनसे बड़े बड़े बसा दिये, मैं ने व्यापार, कला-कौशल, और न्याय वेदान्त की भी उन्नति की है।

लु०—अमीरों से लिया हुआ माल मैं ने भी ग़रीबों को खूब बांटा है। और, न्याय वेदान्त तुम क्या कहते हो, सो मैं निस्सदेह नहीं जानता। पर इतना तो मुझे निश्चय है कि जो हानि संसार की हमसे हुई है, उससे न तुम उऋण हो सकते हो, न मैं।

सि०—(सिपाहियों से) बस, रहने दो, इस आदमी की बेड़ी उतार डालो, और इसे अच्छे काम सौंपो। (स्वगत) क्या हम दोनों में इतनी समानता है! सिकन्दर लुटेरे के समान !!! अच्छा मैं सोचूं!

× × × ×

पाठको! आपने देखा। सिकन्दर उस लुटेरे के कार्यों को अक्षम्य समझता था, और उसे दड देने चला था। वह अपने आपको धर्मात्मा और न्यायाधीश मानता था। परन्तु उपर्युक्त वार्तालाप से उसका अज्ञान, अहकार, और अभिमान हट गया। वह सोचता है कि क्या मैं इस लुटेरे के समान, या, इससे भी अधिक दोषी हूं। वह अपने कृत्यों की निष्पक्ष आलोचना करना चाहता है; अन्ततः कबीर के शब्दों में शायद वह यह स्वीकार करता है कि :—

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखे कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

(७)

जीवन संग्राम

'संग्राम' शब्द प्रिय हो, या न हो प्रत्येक प्राणी का जीवन संग्राम-मय है । मनुष्य को अपने बुद्धि – कौशल से जीवन में कुछ सुविधाये मिल सकती हैं, पर संग्राम से वह बच नहीं सकता । हमें उस में सम्मिलित होना पड़ेगा, बुरा मानने या बड़बड़ाने से कुछ लाभ नही । हम तैयार न होगे, उदासीन या निष्क्रिय खड़े रहेंगे, तो धोखा खांयगे; हानि उठायेंगे । जब युद्ध में भाग लेना ही है तो बेहतरी इसी में है कि अच्छी तरह भाग लें । चक्की पीसनी ही है तो गीत गाते हुए पीसें । रोते हुए, चिल्लाते हुए परिश्रम करेंगे तो भी काम कुछ घट नहीं जायगा । जो साधन हमें दिये गये हैं, उनसे यथेष्ट लाभ उठाना चाहिये, और हां, हम उनमें यथा-सम्भव सुधार भी कर सकते हैं । परन्तु उन के सम्बन्ध में वृथा शिकायत करने से तो कुछ काम न चलेगा । यह कहने से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा, कि "अगर अमुक बात होती तो अच्छा होता, मैं ग्राम में जन्म न लेकर किसी नगर में जन्म लेता, या इस नगर का न होकर दूसरे नगर विशेष का होता, इस

स्कूल में प्रविष्ट न होकर दूसरे स्कूल में पढ़ता — तो बहुत उत्तम जीवन व्यतीत करता। मेरे मा बाप या अन्य सम्बन्धी अमुक श्रेणी के होते तो मै कार्यक्षेत्र में बढ़ बढ़ कर हाथ मारता; मै लड़का न होकर लडकी होता तो सुख से दिन काटता।" ये सब बातें व्यर्थ हैं।

जो साधन, जो स्थान, या जो परिस्थिति हमें दी गयी है, उसी में हमें अच्छे से अच्छा कार्य करके दिखाना चाहिये। नाटक के पात्र का यह काम होता है कि अपना 'पार्ट' अच्छी तरह खेले; यह सोचने विचारने में उसे अपने समय और शक्ति को नष्ट न करना चाहिये कि यह काम मेरे सुपुर्द क्यों किया गया, मुझे दूसरा 'पार्ट' क्यों नहीं दिया गया। इसी प्रकार, जीवन-संग्राम के सिपाही को अगर-मगर का ख्याल छोड़, अपना कर्त्तव्य पालन करने में दत्तचित्त रहना चाहिये।

हां, जो अवसर हमें अपनी उन्नति और सुधार के मिलें, उनका सदुपयोग किया जाना चाहिये। हम उतावले न हों, धैर्य रखें, शिक्षा ग्रहण करते रहे। संग्राम में जो चोटें लगें, उन्हें शान्ति-पूर्वक सहन करे। जीवन में जो बाधायें उपस्थित हों, उनका साहस-पूर्वक सामना करें, दूसरे आदमी हम पर प्रशंसा-पुष्पों की वृष्टि करें, या निन्दा अपवाद रूपी कीचड़ फेंके— भली बुरी जैसी जिन की बुद्धि और

योग्यता हो, उस के अनुसार वे चाहे जो करे — उस से खुश होने या बुरा मानने का हमें विचार न करना चाहिये। मानापमान की बात को सोचने का हमें अवकाश ही न होना चाहिये। हमें तो उस से कहीं अधिक उत्तम कार्य करना है, मार्ग के कुछ अवश्यम्भावी कंटकों को कुचलना है, संग्राम के क्षेत्र में आगे कदम बढ़ाना है।

हमें दूसरे की विजय से कुढ़ना अथवा पराजय से प्रसन्न होना भी न चाहिये। उन्हें, उनके चुकाये हुए मूल्य की वस्तु मिल रही है, हमें अपने श्रम का फल मिलेगा। हमें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। प्रकृति बड़ी निष्पक्ष और न्यायी है। वह दया करना नहीं जानती, बे-रहमी से भी काम न लेगी। उसका लेखा ज्यों का त्यों रहता है--सृष्टि में कारण और कार्य बराबर होता है, अथवा यों कह सकते हैं कि किसी कार्य की मात्रा तथा गुण दोष के अनुसार ही उसका परिणाम होता है।

जातियों और राष्ट्रों के विषय में भी वही व्यवस्था है, जो व्यक्तियों के लिए निश्चित है। जितनी शक्ति और योग्यता किसी में होगी, उतनी विजय-प्राप्ति से उसे कोई रोक नहीं सकता; और, उस से अधिक उसे मिल भी नहीं सकती। इस प्रसंग में यह भी स्मरण रखना है कि हमारी शक्ति और योग्यता समयानुकूल ही होनी चाहिये, हजार पांच सौ वर्ष

पहले के नियमादि उस प्राचीन काल में चाहे जितने उपयोगी रहे हों, यह आवश्यक नहीं है कि अब भी उसी रूप में उपयोगी हो; देशकालानुसार उन में यथोचित परिवर्तन या सुधार करने में हमें सकोच न करना चाहिये। इस प्रकार, समुचित विचार-पूर्वक अपना कार्य सम्पादन करते रहने से ही, हम जीवन-संग्राम में विजयी हो सकते हैं।

(८)

मानवी सुख-दुख

सूर्यदेव का प्रकाश उसी के लिए है, जो नेत्र खोले देख रहा हो। अन्धों के लिए या उनके लिए जो चक्षु रखते हुए भी नहीं देखते, एक क्या अनेक सूर्य भी हों, तो प्रकाश नहीं दे सकते। उनके लिए सर्वत्र अन्धकार ही है। इसी प्रकार, सृष्टि-कर्ता जगदीश्वर ने हमारे सुख के लिए अनेक पदार्थ रच दिये हैं, तो भी हम लोग अपनी अल्पज्ञता के कारण दुःख का ही अनुभव किया करते है।

बहुधा मनुष्य इस बात की शिकायत करते सुने जाते हैं

कि परमात्मा ने हमें दुख ही दुख दिये हैं; दुःख भोगने को ही हमें संसार में भेजा है। ऐसी अवस्था में यह विचार मन में उठे बिना न ही रहता कि परमात्मा कृपालु और दयालु है, फिर, उसने हमें दुःख क्यों दिये।

क्या कोई भी सहृदय पाठक क्षण मात्र के लिए यह कल्पना कर सकता है कि पिता अपने पुत्र को दुःख पहुँचाने की इच्छा रक्खे। हम संसार में प्रत्यक्ष इसका विपरीत अनुभव कर रहे हैं। सदा ही देखने में आता है कि पिता अपने बाल बच्चों के लिए निरन्तर सुख पहुँचाने के उद्योग में लगा रहता है। फिर हम क्योंकर मान लें कि परमपिता जगदीश्वर अपनी प्यारी सन्तान (मनुष्य मात्र) को दुःख-सागर में डुबोना चाहता है। अतः क्या ये विचार बहुत कुछ ठीक नहीं हो सकते कि मनुष्य स्वयं ही अपने दुःख सुख का विधाता है; दुःख बहुत करके तो काल्पनिक हैं, और यदि कुछ वास्तविक भी हैं तो वे हमारे हित के लिए हैं, चाहे हम इसको समझ न सकें। पाठकगण! आइये, थोड़ी देर इस बात पर शान्त चित्त से विचार करें।

जैसी किसी चीज़ की शकल सूरत होती है, वैसी ही उसकी परछाईं पड़ा करती है। जैसे रंग का चश्मा चढ़ाकर हम देखते हैं, वैसा ही रूप आस पास की चीज़ों का नज़र आता है। बस, महात्माओं का यह कथन सत्य है, "जैसे तुम,

तेसी तुम्हारी दुनिया।" यदि हमारी आत्मा शान्त है, विचार पवित्र हैं, मन में त्याग और सेवा का भाव है, तो हमें अपने जीवन में प्राय सुख का अनुभव होता रहेगा। सच्चा सुख बाहर के किसी भी पदार्थ विशेष में नहीं, वह तो अन्दर आत्मा में है। जिसको वहां नहीं मिलता, उसको कहीं भी नहीं मिलेगा। जो चीज़ हमारे अन्दर है उसकी बाहर खोज करना सर्वथा व्यर्थ है।

निम्न लिखित वृत्तान्त ध्यान पूर्वक विचारणीय है। एक वैज्ञानिक, जगलो में घूमते घूमते, पानी की एक तलाई के पास आये, जिसमे घास फूस सड रहा था। अपने परीक्षार्थ उसके जल की एक शीशी भरी और आनन्द में मग्न हो उसे कुछ देर देखते रहे; फिर एक गँवार से, जो पास ही खड़ा था, इस तरह कहने लगे — "अहाहा! मित्र, देखते हो! इस तलाई मे परमात्मा की अद्भुत रचनाओं के सैकड़ों उदाहरण वर्तमान है। केवल वे साधन चाहियें, जिनसे हमें इनका बोध हो सके।" इस पर वह मूढ़मति उदासीनता से बोला 'अजी, बाबू साहब! मुझे तो पहले से ही मालूम है कि यहा मेंढक बहुत ही हैं, पर पकडे जायँ तब ना।'

पाठको! जिस स्थान पर एक विद्वान के लिए विद्या का भण्डार खुला पड़ा है, वहां दूसरे आदमी के लिए गदे जीव-जन्तुओ के सिवा कुछ है ही नहीं। यह संसार एक गुम्बद की

तरह है। मीठे वचन बोलने वालों के लिए, कोई आदमी कटुभाषी नहीं; यदि चाहते हो कि दूसरे तुम से सद्व्यवहार करें तो पहले स्वय इसका अभ्यास करो। दया करो, तुम पर दया होगी, यही प्रकृति का अटल नियम है।

मनुष्य जब बीमार पड़ते हैं तब प्रायः परमात्मा को ही दोषी ठहराया करते हैं। उस समय वे भूल जाते हैं कि हम समझने में समर्थ हों या न हों, रोग शोक आदि जितने भी दुःख के कारण हैं, ये सब हमारे ही अपराधों के फल हैं, दैव का कोप कदापि नहीं। परमेश्वर ने इस संसार को ऐसा नियम-बद्ध किया है कि यदि हम उचित कर्म करते चले जांय तो कोई शक्ति नहीं, जो हमें दुःख पहुँचा सके। विद्वान चिकित्सक एक मत होकर दावा कर रहे हैं कि मनुष्य जाति जितनी बीमारियों से कष्ट उठा रही है, उनमें से अधिकांश ऐसी हैं, जो प्रयत्न से रोकी जा सकती हैं।

यदि हमारा देश दरिद्रता से पीड़ित है तो क्या यह दुःख असाध्य है? क्या इसका कोई इलाज नहीं? परमेश्वर ने हमें हाथ पाव दिये, इनको हिलाएँ; बुद्धि दी है इसको काम में लाएँ। उद्योग करें तो क्योंकर भूखे रह सकते हैं। हां, हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहने से और "हा दैव! हा दरिद्रता!" ऐसा निरन्तर चिल्लाने से कुछ न मिलेगा। बिना यत्न किये शेर भी अपना आहार नहीं पाता।

हम में से बहुतों को अपने प्यारों का वियोग सता रहा है, परन्तु यह हमारी अल्पज्ञता के अतिरिक्त और कुछ सूचित नहीं करता। परम पिता का इस में कोई गूढ़ अभिप्राय अवश्य है, जिसको हम समझने में असमर्थ हैं। फिर, बहुत से दुःख हमारी ही कल्पना से उत्पन्न होते हैं। रस्सी का सांप समझ लिया और लगे शोर मचाने, "हाय रे खाया!" ख्याली भूत प्रेतों से बहुतेरे प्राणी अपने जीवन से हाथ धो बैठते है। ऐसे ही, अन्य कल्पित दुःख संसार में थोड़े नहीं।

दुखों का एक प्रयोजन यह है कि उनके बिना हमें सुखों के आनन्द का यथार्थ अनुभव नहीं होता। सदैव मीठा खाने से, उसमें स्वाद नहीं रहता। नमकीन पदार्थ मिलने चाहिये। अंधेरे के बिना उजाले का, सर्दी के बिना गर्मी का, बीमारी के बिना तन्दुरुस्ती का, ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। बैठे बिठाये दोनों समय पट्टरस भोजन करने वाले को वह आनन्द कहां, जो पसीना बहा कर सूखी रोटी खाने वाले को मिलता है। बस सुख की क़दर वही जानता है जो दुख भुगत चुका हो।

दुखों का दूसरा प्रयोजन यह भी है कि उनसे मनुष्य के धैर्य आदि गुणों की परीक्षा होती है, और, उनमें उत्तीर्ण होने से उसकी कीर्ति संसार में अचल हो जाती है। यदि मर्यादा-

पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने वनवास के कठिन दुःख न सहन किये होते, तो इसमें सन्देह ही है कि वे, इतने सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर भी, हमारे परम पूज्य बने रहते। क्या कारण है कि राजा हरिश्चन्द्रजी का जीवन-चरित्र हमारे हृदय-पटल पर ऐसा अङ्कित हो रहा है, मानो वे हमारे सन्मुख विराज रहे हैं? यही, कि वे अपनी सत्य की परीक्षाओं में पूरे उतरे, धैर्य्य न छोड़ा। सोना मूल्यवान तभी ठहराया जाता है, जब अग्नि के ताप से उसमें कोई खोट नहीं पाया जाता।

आशा है कि पाठक इस कथन पर विचार करेंगे और न्याय-कारी पिता परमात्मा को कभी अन्यायी या दुःख देने वाला न कहेंगे। वह तो हमारा परम प्यारा और रक्षक है। उसने बहुत करके सुख की प्राप्ति हमारे ही अधीन रक्खी है। यदि हम चाहें तो अच्छे अच्छे कर्म करते हुए सदैव ही सुख के भागी बने रह सकते हैं। जब हम दुःख भोग रहे हैं, तब समझ लेना होगा कि यह हमारे ही दुष्कर्मों का फल है, इस जन्म का नहीं तो पहले का है। हमें चाहिये कि सोच विचार कर अच्छे मार्ग पर चलें। कल्पित दुःख को कभी पास न फटकने दें। यदि कोई आपत्ति आवे तो धैर्य्य का त्याग न कर बैठें। वह हमारे कल्याण ही के लिए होगी। रात अँधेरी और दुखदायी है तो क्या परवाह; परिमित समय के पश्चात् इसका अन्त होगा। प्रातःकाल हमें सुख मिलेगा।

(९)

जीवन-यात्रा

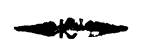

जड़ हो चाहे चेतन, सृष्टि के समस्त पदार्थ गति-शील हैं। जिन पदार्थों को हमने 'अचल' की संज्ञा प्रदान की है (जैसे हिमाचल, विन्ध्याचल, अस्ताचल आदि) वे बेचारे कैसे अचल रह सकते हैं, जब उनका आधार पृथ्वी ही, आठ पहर चौंसठ घड़ी अपने गिर्द, तथा सूर्य के चहुँ ओर, बड़े वेग से दौरा लगाती रहती है*।

हमारी दुनिया में हम भी आ गये। मनुष्य भी अपने पड़ौसी यात्रियों में से एक है। वह कोरा दर्शक अर्थात् तमाशा देखने वाला नहीं रह सकता। उसे कर्म करना पड़ता है, खरा नहीं तो खोटा, पुण्य करना नहीं चाहता तो पाप का भार साथ बांधता है। मतलब यह कि कर्मक्षेत्र

---

* पृथ्वी की परिक्रमा का यह क्रम संसार हित के लिये आवश्यक ही है, क्यों कि इसके गति-स्तम्भन (रुकाव) के साथ प्रलय का योग लगा हुआ है। वैज्ञानिक लोग बतलाते हैं कि पृथ्वी की रफ्तार फ़ी सैकिंड उन्नीस मील के लगभग है, और यदि यह चाल एक दो क्षण के लिए भी रुक जावे तो अत्यन्त गर्मी पैदा होने के कारण, भूतल के समस्त पदार्थ एक दम भस्मीभूत हो जावें।

से उसे छुटकारा नहीं । और, "भेड़ जहां जायगी, वहीं मुँड़ेगी" उक्ति के अनुसार यदि वह एक जगह से भाग जाय तो दूसरे स्थान में पकड़ा जायगा । यदि वह समझे कि मृत्यु के आवाहन से काम बन जायगा और मनोवाछित विश्राम मिलेगा तो यह उसकी भूल है, भ्रम है, और मूर्खता है । बहुत हुआ तो मृत्यु केवल रात्रि की भांति थोड़ा सा विश्राम दे सकती है, कर्म बन्धन से मोक्ष कदापि नहीं । नये जीवन में हमारे सिर पर दूसरी मंजिल की चिन्ता सवार हो जायगी, और सम्भव है, वह मंज़िल इससे अधिक कठिन हो ।

यह स्पष्ट है कि जो मनुष्य कर्मक्षेत्र से बचना चाहे, उसके लिए इस संसार में स्थान नहीं । यात्रा उसे करनी ही पड़ेगी । प्रश्न यह है कि उस की यात्रा में और अन्य पदार्थों की यात्रा में कुछ विशेषता है या नहीं । अवश्य ही मनुष्य कर्मयोनि का जीव है, और, उसमें तथा भोग योनि के प्राणियों में भेद होना चाहिये । अन्य प्राणियों से बढ़कर, मनुष्य को, परमात्मा ने बुद्धि प्रदान की है, जिससे वह अपना भला बुरा सोच सकता है, और अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता है ।

साधारणतया हम देखते हैं कि जब किसी आदमी को छोटा सा भी सफ़र करना होता है, तब वह नाना प्रकार

के विचार किया करता है । उसे कहां पहुँचना है, मार्ग कैसा है, सामान भी काफ़ी है या नहीं, कैसी कैसी बाधाओं की सम्भावना है, क्या क्या बातें उसे सहायक होंगी, इत्यादि। निदान वह मामूली सी यात्रा के लिए अपनी शक्ति-भर तैयारी करने मे कोई कसर नहीं छोड़ता । फिर बड़ी यात्रा--जीवन यात्रा— के लिये तैयारी होना स्वाभाविक ही है। कहीं जाओ, कहीं बठो, सब जगह इस यात्रा की तैयारी ही दृष्टिगोचर होती है। विद्यार्थी दिन रात पुस्तक के पीछे क्यों पड़ा हुआ है ? पत्थर फोड़ने वाला अपने हाथों को क्यों कष्ट दे रहा है ? और निर्धन भारतीय किसान ज्येष्ठ आषाढ़ की कड़ी धूप मे क्यों अपना पसीना बहा रहा है ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है, वे अपने भावी जीवन की यात्रा को सुगम करने के लिए ही वर्तमान काल में अनेक कष्ट उठाते हैं।

प्रश्न होगा कि एक आदमी चोरी या डाके का काम क्यों करता हैं, जिसके फल-स्वरूप उसे दंड मिलता है ? अथवा, एक शराबी नशे मे चूर होकर अपना अहित क्यों करता है, या एक विषयी पुरुष भोगों मे लिप्त होकर अपने समस्त जीवन को क्यों कष्टमय बना लेता है ? निस्सन्देह यदि किसी सज्जन की सत्संगति या सदुपदेश से इनके हृदय-पटल पर यह बात अङ्कित हो जाती कि इन कामों से

अन्तत उनका हित साधन नहीं होगा' तो ये इनमें लिप्त न होते। वे अपने वर्तमान कार्य इसी लिए कर रहे हैं कि उन्हें अपनी अल्पज्ञता के कारण इनमें स्वार्थ-सिद्धि की भावना प्रतीत होती है। इतर अनुभवी और अभिज्ञ जन, इन कामों को पापमय, नीच और अधर्म के विशेषण देते हैं, और इनसे बचते रहते हैं।

यह प्रश्न हो सकता है कि एक धर्माचार्य क्यों उन शत्रुओं के बीच डट कर अपना सदेश सुनाने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न कर रहा है, जहा केवल उसका अपशब्दों से ही नहीं, वरन् ईट और पत्थरों से स्वागत किया जाता है, वहा तो उसे कुछ लाभ न होगा। गौतम बुद्ध सरीखा एक धनवान व्यक्ति क्यों राज-गृह का सुख छोड, त्यागी वैरागी बन कर, घर घर धूल फाकता फिरता है ? एक लेखक क्यों ऐसा साहित्य तैयार करता है, जिसके लिए उसे यथेष्ट पुरस्कार का मिलना तो अलग, समय समय पर अनेक संकटो का सामना करना पड़ता है ? क्या ये लोग भी अपनी भावी यात्रा की तैयारी में लगे हुए हैं ? अवश्य ही मोटी दृष्टि से उक्त प्रश्न के उत्तर में 'हां' कहने से संकोच होता है; संसार इनको स्वार्थी की उपाधि न देकर 'परमार्थी' अलंकार से भूषित करता है। परन्तु हम पूछते हैं कि परमार्थ असल मे है क्या चीज़। क्या वह केवल एक प्रकार

का--हा, उच्च श्रेणी का--स्वार्थ ही नहीं है ? आप आपत्ति करेंगे कि परमार्थ और स्वार्थ में क्या सम्बन्ध ? सुनिए, हमारे जिस काम को दुनिया परमार्थ की संज्ञा देती है, क्या उसके करने में हमारे मन को आनन्द और आत्मा को सन्तोष प्राप्त नहीं होता ? अवश्य होता है । तभी तो हम अनेक विघ्नों को सहकर भी उसके करने पर उतारू रहते हैं ।

एक दृष्टान्त लीजिये : कोई साधु एक गृहस्थ के साथ घूमता घूमता एक तालाब के किनारे पर आ पहुँचा । वहा देखता है कि एक सूअर कीचड में फँसा हुआ है, और उससे निकलने में असमर्थ हैं । साधु बडे वेग से तालाब के भीतर घुस गया, और उस व्याकुल सूअर को बाहर निकाल लाया । तब उसके साथी गृहस्थ को बड़ा अचरज हुआ कि एक महात्मा साधु ने एक सूअर जैसे पशु के लिए इतना कष्ट क्यों उठाया ? पूछे जाने पर, साधु ने उत्तर दिया, महाशय ! इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? इस प्राणी की दशा देखकर मुझे हार्दिक व्यथा हुई और अपनी उस व्यथा को दूर करने के लिए ही मैंने इसे कीचड़ से बाहर निकाला है । अब मुझे चैन पड़ गया, और मेरी जान में जान आ गई ।"

बस, ससार का प्रत्येक व्यक्ति जो भी कार्य्य कर रहा है, उसमें स्वार्थभाव अवश्य है । फिर, वह स्वार्थ चाहे उच्च

श्रेणी का हो या साधारण या अधम श्रेणी का हो। हमें अपनी जीवन-यात्रा में मुख्य लक्ष्य इसी बात की ओर रखना चाहिये कि हमारे स्वार्थ उच्च श्रेणी के रहें। परमार्थ में ही हम अपना स्वार्थ समझें, जिससे हम मनुष्य योनि में यथार्थ (उत्तम कोटि के) मनुष्य और परब्रह्म परमात्मा की सृष्टि में सर्व श्रेष्ठ प्राणी कहलाने के पूर्णतया अधिकारी बनें।

---

(१०)

अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर करो

अधिकांश आदमी इस बात का विचार नहीं करते कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है, हमें जीवन में क्या विशेष कार्य करना है। ऐसे विषय की चर्चा को वे 'शेखचिल्ली का स्वप्न' या 'पागल का प्रलाप' कहेंगे। परन्तु अपने आप को बुद्धिमान समझने वाले ये भले आदमी यह सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि संसार में शेखचिल्लियों का, पागलों का, और स्वप्न देखने वालों का भी एक स्थान है, और हां, महत्त्व-पूर्ण स्थान है। यह शर्त ज़रूर है कि ये सच्चे हों, ढोंगी दिखावटी

न हों; उन में परिश्रम, त्याग, और कष्ट सहन की यथेष्ट मात्रा हो।

महात्मा गांधी ने कुछ समय हुआ एक स्वप्न ही तो देखा था। अहिंसात्मक युद्ध आदि के साथ, उन्होंने कल्पना की थी कि विशाल भारतवर्ष में छोटे बड़े स्त्री पुरुष, धनी निर्धन सबके शरीर को खद्दर से ढक दिया जाय। सभ्यता और यन्त्र युग का अभिमान करने वाले विदेशियों ने, और कल कारखाने वाले यहां के पूंजीपतियों ने ही नहीं, यहां के सर्व साधारण तक ने उन्हें शेखचिल्ली कहा, और पागल समझा। उनका मज़ाक उड़ाया गया। परन्तु आज ईश्वर की कृपा से गांधी जी की बातें स्वप्न नहीं रहीं, वह स्वप्न तो चरितार्थ होता दीख रहा है। हां, अब भी ऐसे अभागों का अभाव नहीं है, जो महात्मा जी के कार्य क्रम के साथ सहानुभूति रखना तो दूर रहा, यथा-सम्भव उसमें बाधा डालने में ही अपनी शान समझते हैं। ये लोग अपने मन में बड़े उत्तेजित हैं, इन्होंने तो अपने बुद्धि-बल से, दुनिया को अङ्कों और घटनाओं का प्रमाण देकर, यह घोषित किया था कि महात्मा जी विफल होंगे। आज उनकी भविष्य-वाणी, उनकी ज्योतिष, उनका तर्क-वितर्क सब झूठा साबित होना चाहता है, और 'पागल' कहे जाने वाला व्यक्ति संसार में पूज्य बन रहा है।

एक गांधी जी ही क्या, अन्य, स्वप्न-दर्शियों का भी, संसार में, यही हाल रहा है। पहले उनका उपहास होता है, वे अपमानित किये जाते हैं, पीछे उनके मार्ग में रोडे अटकाये जाते हैं। परन्तु समय आता है उनके परम शत्रु ही उनके शिष्य बनते हैं, वे उनके चरण-रज से अपने मस्तिष्क की शोभा बढ़ाते और आत्मा को शान्ति देते हैं। कुछ समय पूर्व भगवान तिलक ने 'स्वराज्य' का स्वप्न देखा था। उन्हें इस भयकर अपराध के लिए क्या क्या नहीं सहना पड़ा! जिस भूमि में 'वन्दे मातरम्' कहना भी वर्जित हो, वहां कोई यह घोषणा करे कि 'स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, और हम इसे लेगे'। यह 'भले आदमियों' की भाषा में 'अपराध' नहीं तो क्या है। पर आज तिलक जैसा अपराधी बनने के लिए प्रत्येक स्वाभिमानी भारतीय लालायित है।

गौतम बुद्ध ने अहिन्सा का उपदेश देना, शिवाजी ने गौ ब्राह्मण की रक्षा करना, राणा प्रताप ने हिन्दू स्वाधीनता की स्मृति बनाये रखना, और दयानन्द ने वैदिक धर्म का प्रचार करना, अपने जीवन का लक्ष्य स्थिर किया था। शंकराचार्य, सूरदास, तुलसी दास, मीराबाई, और रामदास भी अपने अपने समय में निराले निराले स्वप्न देखने वाले थे। उन स्वप्नों को चरितार्थ करने में उन्होंने सर्वस्व अर्पण

कर दिया, यहां तक कि सफलता की भावना को भी तिलांजलि दी। संसार उन्हें सफल कहे या विफल, यह वाद विवाद उनके लिए कुछ भी मनोरंजक न था, उन्हें उसके सुनने या विचारने का अवकाश ही न था। अपनी धुन में वे आगे बढ़े चले गये। भोले और अदूरदर्शी आदमी उन्हें केवल 'पागल' के रूप में देखते रहे। परन्तु इस भूमि में ये 'पागल' न हुए होते, तो आज हमें यह दिन भी नसीब न होते, भारतवर्ष अपनी संस्कृति और स्वाभिमान, धर्म और ज्ञान-सम्पति में कहीं अधिक दरिद्र होता।

एक भारतवर्ष की ही कुछ बात नहीं। संसार के प्रत्येक देश पर ऐसे 'पागलों' का भारी ऋण है। मेजिनी ने इटली की स्वतंत्रता का स्वप्न देखा, मेकिस्वनी ने आयर्लैंड के उद्धार की कल्पना की, कार्ल मार्क्स ने मज़दूरों के स्वर्ग का चित्र खींचा, एब्राहम लिंकन ने अमरीका में दासों की स्वतंत्रता का दृश्य देखा। कजूस, स्वार्थी और मूर्ख लोगों के पास इन महात्माओं के लिए 'पागल' और 'शेखचिल्ली' से बढ़कर कुछ और उपाधि देने को न थी। पर आज उनकी आत्माएं देखती होंगी, कि उनके असख्य उत्तराधिकारी इन 'पागलों' की पूजा-अर्चना में लगे हुए हैं।

अस्तु, प्रिय पाठको! हमें अपने जीवन का कोई विशेष

लक्ष्य स्थिर करना चाहिये। हम देखते है कि, यह जमाना विशेषताओ और विशेषज्ञो का है। कोई डाक्टर है, तो उसे आंख कान आदि किसी एक अग के रोगो का इलाज करने में विशेषज्ञ होना चाहिये। यदि कोई अध्यापक है तो वह विज्ञान, गणित, भाषा, अर्थ शास्त्र आदि विविध विषयो में से किसी एक का पारगत हो, और इसमें उसे पूरी दिलचस्पी हो। इसी प्रकार अन्य पेशो के सम्बन्ध मे समझिये। विशेषता का आदर बढ़ता जारहा है।

हमे सोचना चाहिये हमारे जीवन की विशेषता क्या हो। खाना पीना, सोना बैठना, विवाह शादी करना, यार दोस्तों को भोजन कराना, आदि, तो साधारण बातें है। इन पर हम अथवा हमारी आने वाली पीढ़िया कुछ अभिमान नही कर सकती। शायद इनमें से किसी बात की पाच दस वर्ष कुछ स्मृति रहे। परन्तु, इन कामो में लगे रहने वाले अधिकाश व्यक्ति अपनी शारीरिक मृत्यु के साथ ही मर चुकते हैं, पीछे उन्हें कोई पूछता नही। इतिहास में वे ही महापुरुष अमर होते है, जिन्होने अपने जीवन का कोई विशेष उच्च लक्ष्य स्थिर करके उसे प्राप्त करने में बड़ी से बड़ी कुर्बानी की हो, और सब प्रकार की आई हुई कठिनाइयो और आपत्तियो का सामना किया हो। इन की ही कृति या कीर्ति की छाप को सुरक्षित रखना समय अपना कर्तव्य समझता है।

अपने जीवन के लक्ष्य को भली भाति स्थिर करके, धैर्य-पूर्वक उसकी प्राप्ति की धुन मे काम करते रहना चाहिये। यदि, कोई तुम्हे शेखचिल्ली या पागल कहे तो इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं। तुम्हें अपने निश्चित मार्ग से इधर उधर भटकने की ज़रूरत नही। राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, या औद्योगिक—किसी भी एक या अधिक दिशाओं में अपने जीवन का प्रोग्राम बनालो; और, फिर उस धुन मे पूरे उत्साह तथा धैर्य के साथ चले चलो। भगवान भला करने वाला है। ससार के क्षुद्र जीव खाली बैठे अपनी अपनी हाका ही करते हैं। उनकी बातें सुनने योग्य नहीं, उन पर विचार करने का तुम्हें कुछ भी अवकाश न होना चाहिये।

---

(११)

झंडा ऊंचा रहे हमारा

मनुष्यों की स्थिति में कभी कभी बड़े परिवर्तन एक-दम होजाते हैं। आज एक आदमी घर में तथा बाहर बहुत सुखी है, उसकी यथेष्ठ आमदनी है। उसे सब तरह की सुविधायें

और यथेष्ट साधन प्राप्त हैं। कौन जानता है कि कल ही कोई ऐसी घटना होजाय, जिससे उसकी आय का श्रोत बन्द होजाय, अथवा वह विविध सुख साधनों से वंचित कर दिया जाय।

ऐसे अवसर पर साधारण आदमी बहुत घबरा जाता है, वह उन लोगों को अप-शब्द कहता है, जिनसे, उसके विचार में, उसे कष्ट मिले हैं, वह ईश्वर को अन्धा और अन्यायी कहने में संकोच नहीं करता, और उन कामों को करने में भी कुछ आगा पीछा नहीं सोचता, जिन्हें वह कुछ समय पहले, जबकि वह ठंडे दिमाग़ से सोच सकता था, स्वय बहुत घृणित कहता था।

निस्सन्देह संकट के समय में ही मनुष्य की परीक्षा होती है। धन्य हैं, वे व्यक्ति, जो ऐसे अवसर पर धैर्य को हाथ से नहीं जाने देते, और यह स्मरण रखते हैं कि कोई दूसरा व्यक्ति या संस्था हमारा अनिष्ट नहीं करती। हमारा अहित यदि कोई कर सकता है, तो हम स्वय ही कर सकते हैं। संकट और परीक्षा काल में जो समय और शक्ति हमें अपने उद्धार में लगानी चाहिये, उसे हम दुखी होने, चिन्ता-ग्रस्त रहने, वृथा दूसरो की निन्दा करने, और अपने भाग्य को कोसने में ख़र्च करेंगे तो हमारा अहित क्यों न होगा!

हर्ष के समय हम सोचा करते हैं, कि 'झंडा ऊंचा रहे

हमारा'। ज़रूरत है कि संकट या परीक्षा के समय भी हमारा यही सिद्धान्त और आदर्श रहे, यही हमारा पथ-प्रदर्शक हो। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय भी हमारा स्वाभिमान बना रहे, हम आत्म-ग्लानि या पराई निन्दा आदि के आत्म-घातक कार्य न करें। हम पर जो मुसीबतें आवें, उनसे विचलित न हों; धैर्य और दृढ़ता पूर्वक अपने उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहें।

दुर्घटना-वश यदि किसी आदमी के सुख साधनों में कमी होजाय; उदाहरणार्थ पहले उसके पास छः सात जोड़ी बढ़िया कपड़े रहा करते हों, और अब उसे केवल दो से, अथवा एक से ही निर्वाह करना पड़ता हो, और वह भी पहिले जैसी उत्तम न हो, और उससे मिलने वाले मित्र, बिरादरी के आदमी, या रिश्तेदार उसकी निर्धनता या दरिद्रता का अनुभव करके उससे दूर दूर रहने लगें—तो इसमें 'झंडा नीचा होने' की कोई बात नहीं है। हां, यदि वह छल कपट या बेईमानी आदि से धनवान बनने की चेष्टा करता है, तो अवश्य वह अपना 'झण्डा नीचा गिराने का' दोषी है। इसी प्रकार कल्पना करो कि एक विद्यार्थी कई वर्ष से अपनी श्रेणी में बहुत अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होता आया है, यहां तक कि प्रथम या द्वितीय रहने के उपलक्ष्य में पारितोषिक भी पाता रहा है, परन्तु अब बीमारी या किसी अन्य विशेष

कारण से परीक्षा में अनुत्तीर्ण रह जाता है—तो इसमें उसका 'झण्डा नीचे होने' की कोई बात नहीं है। इसके विपरीत यदि कोई विद्यार्थी उत्तीर्ण होने या पारितोषिक आदि प्राप्त करने के लिए अनुचित उपायों से काम लेता है, तो चाहे दूसरे आदमी इस बात को न भी जान सकें, वह अपना झण्डा नीचे गिरा रहा है।

जिस समय सुख के सब साधन प्राप्त हों, खूब आमदनी हो, अनेक आदमियों से मेल जोल हो सब काम ठीक ढंग से हो रहे हों, उस समय तो कोई भी आदमी अपना झण्डा ऊंचा रख सकता है। परन्तु उसमें कोई विशेषता नहीं, वह कुछ अभिमान के योग्य बात नहीं। संकट और परीक्षा के समय हमारा झंडा ऊंचा रहे, इसका हमें प्रयत्न करना चाहिये। परमात्मा हमारी सहायता करेगा। अस्तु, सुख की भांति दुख में भी, हम अपना मस्तक ऊंचा रखें, और जीवन में विविध कठिनाइयों का सामना करते हुए भी ध्यान रखें 'झडा ऊंचा रहे हमारा'।

राष्ट्रीय विद्यालयों, तथा सरकारी स्कूलों में प्रचलित,
पाठ्य पुस्तकों, पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये
विशेष उपयोगी

भारतीय ग्रन्थ माला,

वृन्दावन

"प्रत्येक देश-प्रेमी को इस माला की पुस्तकें अपनाकर, इसके व्यवस्थापक को सत्साहित्य की वृद्धि के लिये उत्साहित करना चाहिये"।

—सैनिक

It is the duty of every Hindi-knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing

— The Education.

१ भारतीय शासन Indian Administration—"राजनैतिक ज्ञान के लिये आइने का काम देने वाली और "विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बड़े काम की"। छटा संस्करण; मूल्य ॥=)

२ भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, इतिहास आदि दस पाठ्य विषयों की आलोचना, और मातृ-भाषा जीवन का लक्ष्य आदि ग्यारह विचारणीय विषयों की विवेचना। "नये ढंग की रचना।" तीसरा सस्करण; मूल्य ॥=)

३ भारतीय राष्ट्र निर्माण Indian Nation Building—राष्ट्रीय समस्याओं का "बहुत ही योग्यता और स्वतंत्रता से विचार किया गया है।" दूसरा संस्करण। मूल्य ॥=)

४ भावना—(ले०—श्री स्वामी आनन्दभिक्षुजी सरस्वती)

करने वाली। नवयुवकों के लिये विशेष उपयोगी, ओजस्वी रचना। मूल्य ॥=)

५–सरल भारतीय शासन–साधारण योग्यता वालों के लिये, राज-प्रबन्ध के ज्ञान की अत्युपयोगी पुस्तक। मूल्य ॥)

६– भारतीय जागृति–Indian Awakening — गत सौ वर्षों का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास। मूल्य १)

७–विश्व वेदना–मानव समाज के भिन्न भिन्न पीड़ित अंग—मज़दूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवायें, वेश्याएं, क़ैदी और अनाथ आदि अपनी अपनी वेदना बता रहे हैं। उनकी व्यथा सुनिये। कष्ट पीड़ितों की वेदना के निवारण के विषय में भी विचार किया गया है। मूल्य ॥।=)

८–भारतीय चिन्तन–राजनतिक, अन्तराष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आदि विषयों का मनोहर वर्णन। सरस निबन्ध। मूल्य ॥।=)

९–भारतीय राजस्व Indian Finance–दो सौ करोड़ रुपये के वार्षिक सरकारी आय-व्यय का ज्ञान प्राप्त कर, आर्थिक स्वराज्य प्राप्त कीजिये। मूल्य ॥।=)

१०–निर्वाचन नियम Election Guide (ले०–श्री-दयाशंकर जी दुबे एम. ए., और, भगवानदास केला)—व्यवस्थापक संस्थाओं, म्यूनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों के निर्वाचकों और उम्मेदवारों के लिये अत्यपयोगी। मूल्य ॥–)

११-वानब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—एक आधुनिक आदर्श महिला का मनन करने योग्य, सचित्र जीवन-चरित्र। स्त्री शिक्षा की अनूठी पुस्तक। साधारण, सजिल्द और राज संस्करण का मूल्य क्रमशः १॥), १॥।), ३)

१२—राजनीति शब्दावली Political Terms—राजनीति के हिन्दी-अंगरेज़ी, तथा अंगरेज़ी-हिन्दी पर्यायवाची शब्दों का उत्तम संग्रह। मूल्य।-)

१३—नागरिक शिक्षा Elementary Civics—सरल भाषा में नागरिकों के कर्त्तव्यों, और सरकार के कार्य्यों—सेना, पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धंधे, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों का विचार। दूसरा संस्करण। मू० ॥=)

१४ ब्रिटिश साम्राज्य शासन Constitution of the Br. Empire (ले०—श्री दयाशंकरजी दुबे एम ए, और भगवानदास केला)—इंगलैंड की, तथा उसके साम्राज्य के स्वतंत्र तथा परतंत्र उपनिवेशों, एवं अन्य भागों की शासन पद्धति का सरल सुबोध वर्णन। मूल्य केवल ।॥=)

१५—श्रद्धाञ्जलि—"यह श्रद्धा के पथ में पूर्व और पश्चिम, नवीन और प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और विधर्मी सब की अर्चना कर रही है। वीर-पूजा में प्रेरणा, उत्साह और प्राण की माग की गयी है।" इसमें २९ महापुरुषों के दर्शन हैं। मूल्य केवल ।॥=)

१६—भारतीय नागरिक—इसमें भारतीय नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों के अतिरिक्त, किसानों, ज़मींदारों लेखकों, सम्पादकों, विद्यार्थियों और अध्यापकों, तथा महिलाओं

और दलित जातियों आदि को देशोन्नति के लिए दी जाने वाली सुविधायें बतलायी गयी हैं। मूल्य ॥)

१७—भव्य विभूतियां (ले०—श्री शंकरसहायजी सक्सेना एम. ए, विशारद)—राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल, गुरु गोविन्दसिंह, लक्ष्मी बाई, महाराणा सांगा, दुर्गादास, और जयमल फत्ता का मनोहर जीवन चरित्र। त्याग, साहस और बलिदान का अनुपम उपदेश। मूल्य ॥=)

अन्य पुस्तकें।

संसार के सम्वत	॥-)	नागरिक शास्त्र	२)
भारतीय अर्थ शास्त्र प्रथम भाग	१॥)	हिन्दी भाषा मे अर्थ शास्त्र	=)
,, द्वितीय भाग	१)	हमारा प्राचीन गौरव	-)
		हिन्दी भाषा में राजनीति	-)

इस ग्रन्थ माला की कई पुस्तकें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; नार्मल स्कूल, इन्दौर; काशी विद्यापीठ; गुरुकुल कांगड़ी; गुरुकुल गुजरान वाला; प्रेम महाविद्यालय, वृन्दावन; आदि में पाठ्य पुस्तकें हैं; तथा सयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, गवालियर, बड़ौदा, आदि में पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत है।

देश प्रेमी पाठकों को ये पुस्तकें मंगाकर पढ़नी चाहियें। प्रत्येक नगर या गांव में इनका प्रचार करने की आवश्यकता है।

भगवानदास केला
भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन.

नोट—इस माला की जिन पुस्तकों के लेखक का नाम नहीं दिया गया है; वे श्री भगवानदास केला, वृन्दावन, की कृतियां हैं।

वार्षिक मू० ३) 'रेलवे समाचार' एक प्रति का ।-)

रेलवे विषयक हिन्दी भाषा का एक मात्र सचित्र मासिक पत्र

इसमें प्रति मास रेलवे सम्बन्धी उच्च कोटि के उपयोगी लेख, समाचार, सूचनाएँ, हाईकोर्टों के मफ़ैके फ़ैसले तथा परिवर्तित रेटों की खबरें प्रकाशित होती हैं। "पत्र सर्व साधारण के काम का तो है ही, पर उन व्यवसाइयों के लिये जिने रेलवे पदाधिकारिओं से सदा झगड़ने का अवसर आता है यह पत्र 'गाइड' का काम देगा—स्वराज्य खंड ।।"

नोट:—अन्डर चार्ज, ओवर चार्ज अथवा रेट आदि का रेलवे से झगड़ा पड़ गया हो, तो 'रेलवे समाचार' कार्यालय से उचित और पुख्ता राय लेकर लाभ उठाना न भूलें। कार्यालय आपकी सेवा सहायता के लिये सदैव प्रस्तुत है।

रेलवे का कायदा क़ानून—इस पुस्तक में रेलवे सम्बन्धी समस्त क़ायदे क़ानून, रेटों आदि का समावेश बड़ी सरल भाषा में किया गया है। हिन्दी में इस विषय की यह एक ही पुस्तक है। मू० ४)

पत्र लेखक—सराकारी महकमों के साथ लिखा पढ़ी करते समय जिन पत्रों की अत्याधिक आवश्यकता पड़ती रहती है उनके अंगरेज़ी मसौदे, तथा हिन्दी में उनका सार बढ़िया ढंग से दिया गया है। मूल्य ३); (प्रेस में)।

बिल्टी बोध रजिस्टर—इसका चौथा संस्करण छपकर तैयार है इसमें क्रमानुसार बिल्टी की नक़लें लेने के खानों के अतिरिक्त रेलवे, डाक, तार आदि के आवश्यक क़ायदे क़ानून भी दिये गये हैं। मूल्य ।≡) से लेकर १॥) तक।

मिलने का पता:—

रेलवे समाचार कार्यालय, ४४। स्ट्रैन्ड रोड, कलकत्ता।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज़

हिन्दी की यह सब से पहली और सबसे श्रेष्ठ ग्रन्थमाला है। इसमें अब तक लगभग ८० ग्रन्थ विविध विषयों के निकल चुके हैं, जिनकी हिन्दी जगत में एक स्वर से प्रशंसा हुई है। ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को सब ग्रन्थ पौनी क़ीमत में दिये जाते हैं। आठ आना 'प्रवेश फ़ीस' भेजने से स्थायी ग्राहक बना लिये जाते हैं। एक कार्ड लिखकर नियमावली और बड़ा सूचीपत्र मंगा लीजिए। थोड़े से ग्रन्थों के नाम नीचे दिये जाते हैं, इन्हें मंगाकर देखिए :—

नाटक			उपन्यास	
मेवाड़ पतन (द्विजेन्द्र लाल)		।।।=)	प्रतिभा	१।)
दुर्गादास		१)	आंख की किरकिरी	१॥)
शाहजहां	,,	१)	शान्ति कुटीर	१=)
नूरजहां	,,	१=)	अन्नपूर्णा का मन्दिर	१)
राणाप्रताप सिंह	,,	१॥)	छत्र साल	२॥)
चन्द्र गुप्त	,,	१)	चन्द्र नाथ	।।।)
सुहराब रुस्तम	,,	॥=)	विधाता का विधान	२॥)
ताराबाई	,,	१)	घृणामयी	१।)
भारत रमणी	,,	।।।=)	परख	१)
			चिरकुमार सभा	१।)

(नाटक)

उस पार	,,	१=)
सीता	,,	॥=)
पाषाणी (अहल्या)	,,	।।।)
सिंहल विजय	,,	१=)

(उपन्यास)

फूलों का गुच्छा		१)
,,	द्वि० भा०	१)
पुष्प लता		१)
रवीन्द्र कथा कुंज		१)

साहित्य

कालिदास भवभूति	१।)
साहित्य मीमांसा	१=)
प्राचीन साहित्य	॥-)
साहित्य	।।।)
रस और अलंकार	॥-)

जीवन चरित्र

आत्मोद्धार	१)
महादजी सिन्धिया	।।।)
काबूर	१)
कोलम्बस	।।।)
कर्नल सुरेश	।।)

इतिहास

भारत के प्राचीन राजवंश, तीन भाग, प्रत्येक,	३)
आयर्लैण्ड का इतिहास	२।)
नागपुर के भोंसले	१।।)
मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण	३)

विविध

स्वाधीनता	१।।)
स्वदेश	॥=)
राजा और प्रजा	१)
वर्तमान एशिया	२)
देश दर्शन	२)

मिलने का पता—

संचालक, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग़, गिरगांव, बम्बई।